श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिक

विवेक शिखा

वर्ष–१ सितम्बर–१९९० अंक–१

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

५१. श्री बी० भी० नागोरी—कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा—समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल—खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता - जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी -- जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्यायएलेन बंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन - कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस—दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ—हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका—डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम—इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा -इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्तिनाथानन्द - रामकृष्ण मठ,इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप—रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे सिवनी मालवा (म प्र.)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—दुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे. हेमनानी—नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया—बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता—परोना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कल्ला - जयपुर, (राजस्थान)
९०. श्री प्रफुल्ल तुंगारे—पुणे (महाराष्ट्र)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. नाम गा मना (भजन)	सारदातनय	२
३. वर्तमान युग के लिए रामकृष्णभावान्दोलन	स्वामी गंभीरानन्द	३
४. नरदेव श्रीरामकृष्ण	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१४
५. रामचरितमानस में गुरुतत्व	स्वामी शशांकानन्द	१७
६. श्रीरामकृष्ण के भक्त	डॉ० नंदिता भार्गव	२१
७. त्याग और वैराग्य (२)	स्वामी रामदेवानन्द	२६
८. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	३०
९. विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ६ | १९९०—सितम्बर | अंक — ९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

क्या सभी लोग भगवान् के दर्शन पा सकेंगे ? किसी को भी दिन भर भूखा नहीं रहना पड़ता। किसी को सबेरे नौ बजे, किसी को दोपहर के दो बजे, तो किसी को शाम के वक्त भोजन मिल जाता है। उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तर में किसी न किसी समय, इसी जन्म में या अनेक जन्मों के बाद, सभी को भगवान् के दर्शन प्राप्त होंगे।

(२)

कामिनी-कांचन की वासना में मग्न हुआ मन मानो कच्ची सुपारी की तरह है। सुपारी जब तक हरी रहती है तब तक उसका गूदा खोपड़े के साथ चिपका हुआ रहता है पर जब वह सूख जाती है तो खोपड़ी से अलग हो जाती है और खोपड़ी को हिलाने से अन्दर-ही-अन्दर हिलती है। इसी प्रकार, जब कामिनी-कांचन की वासना सूख जाती है तब आत्मा देह से बिल्कुल अलग ही अनुभूत होने लगती है।

(३)

कामिनी और कांचन ने सारे संसार को पाप पंक में डुबो रखा है। स्त्रियों की ओर यदि तुम भगवती जगदम्बा की दृष्टि से देखो तो तुम उनके हाथ से बच सकते हो। जब तक कामिनी-कांचन की तृष्णा नहीं बुझ जाती तब तक भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते।

(४)

जिस प्रकार पिचकारी की छड़ पिचकारी में अछूती रहती है, उसी प्रकार ईश्वर भी देह में निर्लिप्त होकर रहते हैं।

भजन

—सारदातनय

नाम गा मना

(धुन—दादरा)

सदा 'रामकृष्ण रामकृष्ण' नाम गा मना।
(लगा) लगा लगन चरनन में मगन बना जा मना ॥

प्रभू पूर्णकाम हैं, परम शान्तिधाम हैं
शुभकर चिर सुन्दर नयनाभिराम हैं।
(जान) सत्य एकमेव वही, यह जग सपना मना ॥

नाथ करें मोहनाश, भरें हृदय में प्रकाश,
हरें कर्मपाश, दूर करें सकल त्रास।
(उनकी) कृपा दृष्टि मिटा दे, समूल भवतृषा मना ॥

वही परम सुखनिधान, अकारण करुणावान,
सहज करें नत जन को परम पद प्रदान।
(वही) कमल चरण बना शरण, तज दे भ्रमना मना ॥

वर्तमान युग के लिए रामकृष्ण भावान्दोलन

श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज
महापूर्वाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

[रामकृष्ण संघ के द्वितीय महाधिवेशन में २३ दिसम्बर १९८० को संघ के तत्कालीन सहाध्यक्ष और बाद में महाध्यक्ष ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज के अंग्रेजी में प्रदत्त अध्यक्षीय भाषण का हिन्दी रूपान्तर। रूपान्तरकार हैं ब्र० विवेक जो सम्प्रति रामकृष्ण मिशन, टाकी, प० बंगाल में कार्यरत हैं -- सं०]

भगवान श्री रामकृष्णदेव के अनुसार मानव-जीवन का उद्देश्य भगवान-लाभ करना है। किसी व्यक्ति के कार्य को व्यक्ति में पहले से ही स्थित ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति के आधार पर आँका जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के लिए ईश्वर की ओर ले जाने वाले विभिन्न रास्ते हो सकते हैं और वे सभी सत्य हैं, बशर्ते उनपर निष्कपट भाव से विश्वास किया जाय तथा परिश्रमपूर्वक उनका अनुसरण किया जाय। संसार की संरचना में बहुत्व के मध्य एकत्व का भाव विद्यमान है। रामकृष्णदेव राजनीति, अर्थ-शास्त्र या समाजशास्त्र में दिलचस्पी नहीं रखते थे; परन्तु, उनके कुछ कार्य तथा उक्तियाँ आधुनिक मानव के लिए इस भाव से अर्थपूर्ण हैं कि वे उन्हें दिशा दिखलाते हैं, जिसके अनुसरण से मनुष्य का संपूर्ण उत्थान हो सकता है। ऐसे सारे कार्यकलाप वस्तुतः आध्यात्मिकता पर आधारित होने चाहिए तथा वह आध्यात्मिकता जिसे रामकृष्णदेव ने अपने जीवन में उतारी थी, वास्तविक मानवीय विकास के लिए जीवन के किसी भी क्षेत्र में बाधक नहीं है। आधुनिक विज्ञान ने भौतिकवादी विचारों द्वारा मानवजाति को उसकी आध्यात्मिकता से वंचित कर दिया है। श्रीरामकृष्ण ने इन भयंकर भूलों के लिए शोधक उपाय सुझाये हैं।

उदाहरण के लिए, जहाँ विज्ञान सभी प्रतीयमान घटनाओं की व्याख्या के लिए यांत्रिक नियमों में विश्वास करता है तथा अपवाद स्वरूप घटित होनेवाली घटनाओं को केवल 'प्रकृति की सनक' कहकर अस्वीकार कर देता है, वहीं श्रीरामकृष्ण प्रत्येक घटना के पीछे एक बुद्धिमान-सत्ता के अस्तित्व में विश्वास रखते थे। इस बात को विज्ञान भी मानता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के बहुत से ऐसे दुर्बोध अंश हैं, जो उसे अज्ञात हैं तथा उनका वास्तविक स्वरूप अंधकारपूर्ण है। लेकिन श्रीरामकृष्ण ने अपने गँवारू बाल्यजीवन में भी अपनी स्वाभाविक ईश्वरोन्मुखी वृत्ति द्वारा दिखलाया कि मनुष्य वास्तव में ब्रह्मस्वरूप है तथा उसकी आध्यात्मिकता वातावरण द्वारा गढ़ी हुई कृत्रिम अलंकरण नहीं है। जब लोग कहते हैं कि मानव समाज का विकास इसकी भौतिक समृद्धि से होता है तो श्रीरामकृष्ण भी इस विचार का अंशतः समर्थन अपनी इस उक्ति द्वारा करते हैं कि 'खाली पेट धर्म नहीं होता'। परन्तु मानो ईसा के इस कथन की पुष्टि के लिए कि 'मनुष्य केवल रोटी से ही जिंदा नहीं रह सकता' उन्होंने एक हाथ में मिट्टी का ढेला लिया तथा दूसरे में चाँदी का सिक्का। कुछ देर तक उसे एक हाथ से दूसरे हाथ में बदलते रहे फिर दोनों को ही पानी में

फेंककर बोले, "मिट्टी का ढेला तथा चाँदी का सिक्का दोनों एक ही है।" इसके द्वारा उन्होंने दिखलाया कि आध्यात्मिकता के मूल्य पर आर्थिक उन्नति आत्मघातक है। जब विकासवादी ऊँची आवाज में नारे लगाने लगे –'अस्तित्व के लिए संघर्ष' 'योग्यतम की उत्तरजीविता' या 'वीरभोग्या वसुन्धरा' इत्यादि तो रामकृष्णदेव ने घोषणा की कि स्त्री एवं पुरुष के साथ केवल प्रेम ही नहीं किया जाना चाहिए बल्कि ईश्वर मानकर उनकी पूजा भी की जानी चाहिए। मानवीय संबंध विश्वजनीन सेवा के भाव पर आधारित होना चाहिए। एक मौलिक बात जो स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरुदेव से सीखी थी वह यह कि व्यक्ति को केवल अपनी व्यक्तिगत-मुक्ति के लिए ही प्रयत्न नहीं करना चाहिए, वरन् इस सर्वश्रेष्ठ प्रयास में दूसरों की भी सहायता करनी चाहिए। जहाँ वैज्ञानिक लोग सर्वत्र पदार्थ एवं ऊर्जा को देखते हैं, वहीं श्रीरामकृष्ण सर्वत्र केवल ईश्वर को ही देखते थे। वृक्ष के सहारे खड़े एक एंग्लो-इंडियन लड़के को देखकर उन्हें श्रीकृष्ण का स्मरण हो आया और वे समाधिस्थ हो गये। शराब की दुकान के पास से जाते समय कुछ मस्त शराबियों को देखकर वे वास्तविक दृश्य को भूल गये और आनन्द में लीन हो गये।

सामाजिक समस्याओं का समाधान अध्यात्म के आधार पर होना चाहिए। उदाहरण के लिए, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था, "जाति का भेदभाव केवल एक ही उपाय से मिटाया जा सकता है— भक्तों की कोई जाति नहीं होती है।" जब कप्तान विश्वनाथ उपाध्याय ने रामकृष्णदेव की आलोचना इसलिए की कि वे ब्रह्मसमाजी केशवचन्द्र सेन के पास आते-जाते हैं, जो समुद्र पार जाकर अपनी जाति खो चुके थे तथा जो जाति-पाति के भेद को नहीं मानते थे, तब श्रीरामकृष्ण का मुँहतोड़ जबाव था, "तुम रुपयों के लिए लेफ्टिनेंट गर्वनर के पास जा सकते हो और क्या मैं धर्म-चर्चा के लिए केशव के पास नहीं जा सकता?" उन्होंने अपने प्रधान शिष्य के रूप में स्वामी विवेकानन्द को चुना, जो जाति से ब्राह्मण नहीं थे। वे छोटा परिवार पसन्द करते थे तथा उनका सुझाव था कि एक या दो सन्तान होने के बाद पति-पत्नी को ईश्वर की चर्चा करते हुए भाई-बहन की तरह रहना चाहिए। जीवन में जिस बात की जरूरत है वह है ईश्वर के प्रति प्रेम। उन्होंने सरल भाषा में कहा, "अगर कोई आदमी सूअर का मांस या गोमांस खाकर भी ईश्वर का चिन्तन करता है तो वह प्रशंसा के योग्य है। लेकिन अगर कोई हविष्यान्न खाकर भी विषय-भोग का चिंतन करता है तो मैं कहूँगा– उसे धिक्कार है।' पत्नी को औरत न मानकर उसे भगवती स्वरूपा समझते हुए सम्मान करना चाहिए। उनकी दो विलक्षण उक्तियाँ थी कि "अगर ईश्वर की पूजा मूर्ति में की जा सकती है तो मनुष्य में क्यों नहीं की जा सकती? और यह कैसी बात है कि ईश्वर आँख मूँदकर ही देखे जा सकते हैं, खुली आँखों से नहीं।" ये और इस प्रकार के दूसरे विचार और आदर्श इतने परिवर्तनात्मक थे कि उसने सारे संसार के चिन्तनशील लोगों के दिमाग में हलचल पैदा कर दी और इन्हीं विचारों के आधार पर रामकृष्ण-आंदोलन का सूत्रपात हुआ।

रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन के बारे में अधिक कहने की जरूरत नहीं है क्योंकि अब ये सुप्रसिद्ध हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त, इस विषय पर सम्मेलन के किसी दूसरे सत्र में विचार किया जायेगा। विशेषकर जो बात यहाँ कहनी है, वह यह कि रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के संन्यासी स्वामी विवेकानन्द के निर्देशों का अनुसरण करते हुए सतर्क एवं चौकस होकर आगे बढ़ रहे हैं। इसके फलस्वरूप जनसाधारण के समक्ष इस विराट आंदोलन में हमारी स्थिति बहुत अधिक प्रभावशाली नहीं रही है, जहाँ तक कम से कम ठोस परिणाम की बात है। परन्तु, मठ एवं मिशन

का यह कार्य दोनों ही संस्थागत विकास तथा सैद्धान्तिक विस्तारण के क्षेत्र में बहुत हदतक अनुपूरक ढंग से दूसरे कार्यकारी केन्द्रों, संस्थाओं, संघों, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों, राहत कार्य, प्रवचनों, अध्ययन मंडलियों इत्यादि द्वारा किये गये हैं, जिन्हें हम अनभिज्ञात, असंबंधित केन्द्र या निजी केन्द्र के नाम से पुकारते हैं। आइए, हम इस रामकृष्ण-आंदोलन पर जरा विहंगम-दृष्टि डालें। यद्यपि इस आंदोलन को रामकृष्ण-आंदोलन की संज्ञा ठीक ही दी गयी है, फिर भी कुछ ऐसे लोग हैं, खासकर राजनीतिज्ञ, समाज-विज्ञानी तथा मानवतावादी जो स्वामी विवेकानन्द को अधिक प्रधानता देते हैं। इतिहास को इस प्रकार के दृष्टिकोण में संशोधन लाना है; फिर भी, सुविधा एवं समझौता के ख्याल से, आइए, हम इसे रामकृष्ण-विवेकानन्द-आंदोलन के रूप में प्रस्तुत करें – यह बात हमेशा ध्यान में रखते हुए कि ये भाव श्रीरामकृष्ण से निःसृत हुए थे तथा स्वामी विवेकानन्द ने अपनी सक्रियता के द्वारा संसार को इससे अवगत कराया एवं लोगों को बताया कि इन विचारों को कैसे कार्य में परिणत किया जाय।

भारत में हुए विकास पर रामकृष्ण एवं विवेकानन्द के प्रभाव के सम्बन्ध में रोमांरोलाँ ने अपनी पुस्तक 'दि लाइफ ऑफ विवेकानन्द एण्ड दि यूनिवर्सल गॉस्पेल' में लिखा है—'यह "बृहत्तर भारत", यह नवीन भारत—जिसका विकास राजनीतिज्ञों तथा विद्वानों ने, छलपूर्वक, हमलोगों से छिपाकर रखा है और जिसका असाधारण प्रभाव अब प्रत्यक्ष हो रहा है— श्रीरामकृष्ण के ओज एवं भावों से गर्भपूरित है। परमहंसदेव तथा उनके विचारों को कार्य में परिणत करने वाले महावीर रूपी नक्षत्र-द्वय उसके (भारत के) वर्त्तमान भाग्य को प्रभावित करते हैं तथा दिशा दिखलाते हैं। इसकी चैतन्ययुक्त कांति एक विशिष्ट गुण या प्रभाव है जो भारत भूमि में क्रियाशील होकर उसे बहुफलदायी बना रहा है। भारत के वर्त्तमान नेतागण; विचारकों के राजा, कवियों के सम्राट एवं महात्मा अरविन्द घोष, टैगोर तथा गाँधी— 'राजहंस' एवं 'बाज' रूपी नक्षत्र-द्वय की छत्रछाया में पल्लवित, पुष्पित एवं सफल हुए हैं – एक सच्चाई है, जिसे अरविन्द तथा गाँधी ने सार्वजनिक ढंग से स्वीकार किया है।'

१९२३ ई० में, बेलुड़ मठ के प्रांगण में स्वामी विवेकानन्द के जन्मोत्सव पर एक सभा को संबोधित करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था, "मैं यहाँ (बेलुड़ मठ) स्वामी विवेकानन्द की पवित्र स्मृति में, जिनका जन्मोत्सव आज मनाया जा रहा है, अपनी श्रद्धांजलि तथा प्रणाम निवेदन करने आया हूँ। मैंने उनकी कृतियाँ अच्छी तरह पढ़ी हैं और उन्हें पढ़कर मातृभूमि के प्रति जो मेरा प्रेम था वह सहस्रगुणा बढ़ गया। मैं, आप युवकों से निवेदन करता हूँ कि जिस स्थान पर स्वामी विवेकानन्द रहे तथा महासमाधि को प्राप्त हुए, उस स्थान का कुछ भाव एवं ओज हृदयंगम किये बगैर आप खाली हाथ न लौटें।"

भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने २० मार्च, १९४९ ई० को रामकृष्ण आश्रम, दिल्ली में इस प्रकार अपना विचार व्यक्त किया था, "स्वामीजी ने जो कुछ लिखा है तथा कहा है वह महत्वपूर्ण तथा रोचक है। वह रोचक लगना ही चाहिए तथा वह हमें भविष्य में दीर्घकाल तक प्रभावित करता रहेगा। राजनीतिज्ञ शब्द का जो हम साधारण अर्थ लेते हैं, उस अर्थ में वे राजनीतिज्ञ नहीं थे; फिर भी वे थे। मेरे ख्याल में वे भारत के आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन के महान संस्थापकों में से एक थे। आपका जी चाहे तो दूसरा शब्द भी व्यवहार कर सकते हैं। बाद में चलकर बहुत अधिक संख्या में जिन लोगों ने कमोबेश उस आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया था, उन्हें स्वामी विवेकानन्द से प्रेरणा मिली थी। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावशाली ढंग से उन्होंने वर्त्तमान भारत को प्रभावित किया था।

मेरा विश्वास है कि हमारी नयी पीढ़ी स्वामी विवेकानन्द से निःसृत होने वाले ज्ञान, ओज एवं उत्साह के झरने से भरपूर लाभ उठायेगी।"

भारत के गणतंत्र होने के पूर्व के अंतिम गवर्नर-जेनरल चक्रवर्त्ती राजगोपालाचारी ने कहा था, "स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म तथा भारतवर्ष की रक्षा की। उनके बगैर हमने अपना धर्म खो दिया होता तथा अपनी स्वतंत्रता नहीं प्राप्त कर पाते। इसलिए, हम स्वामी विवेकानन्द के ऋणी हैं। हम कामना करते हैं कि उनकी श्रद्धा, उनका साहस, उनका ज्ञान हमें सदा प्रेरित करता रहे ताकि जो निधि हमने उनसे प्राप्त की है, उसे हम सुरक्षित रख सकें।" यद्यपि बहुत से नेता कहते हैं कि प्रत्यक्ष या अप्रत्य रूप से भारत का राजनैतिक-पुनर्जागरण स्वामी विवेकानन्द के द्वारा हुआ है, तथापि स्वामीजी ने स्वयं जोर देकर इस बात को बारंबार नकारा है कि वे एक राजनीतिज्ञ हैं। सितम्बर के अंत में, १९८० ई० में स्कॉटिश चर्च कालेज के एक समारोह में भाग लेते हुए, श्रीमती इंदिरा गाँधी ने कहा कि स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि नैतिकता एवं आध्यात्मिकता राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का मूल सिद्धान्त हो। उस अवसर पर उन्होंने कहा कि राजनीति के प्रवेश से शैक्षणिक वातावरण दूषित हो गया है तथा इसका प्रतिकार स्वामी विवेकानन्द, जो कभी उस कॉलेज के छात्र थे, के विचारों के अनुसरण में निहित है, जिन्होंने शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा था कि शिक्षा का अर्थ केवल जानकारी हासिल कर लेना ही नहीं है, वरन् मनुष्य निर्माण करने वाले तथा चरित्र गठन करने वाले भावों को आत्मसात करना है।

स्वामी विवेकानन्द ने न केवल राजनीति को ही नकारा, वरन् राष्ट्रवाद, मानवतावाद या संसार पर शासन के लिए 'ईश्वर द्वारा चुने हुए लोग' जैसी संकीर्ण भावनाओं का भी तिरस्कार किया। स्वामी विवेकानन्द इस अर्थ में क्रान्तिकारी थे कि वे सम्पूर्ण मानव समाज के पुनर्गठन के लिए अपने गुरुदेव के संदेश पर आश्रित रहे, जो कि अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त पर आधारित था; जिसके अनुसार सब में ईश्वरत्व अन्तर्निहित है, बहुत्व के मध्य एकत्व का भाव विद्यमान है तथा प्रेम सारी नैतिकता का सारतत्त्व है। इस बात का समर्थन एक अन्य स्रोत से भी मिलता है। क्रांतिकारी आंदोलन के संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा रॉलेट कमिटी की स्थापना की गयी थी, जिसने अपनी रिपोर्ट में लिखा, "वे (विवेकानन्द) अपने अनुयायियों की एक छोटी सी टोली के साथ १८९७ ई० में भारत लौटे और उनको बहुत से शिक्षित हिन्दुओं ने अपने धर्म के उद्धारकर्त्ता तथा मसीहा के रूप में अभिनंदित किया। उन्होंने रामकृष्ण मिशन की देखरेख में लोकोपकारी तथा धार्मिक कार्यकारी केन्द्रों की स्थापना की। अपने गुरुदेव की शिक्षाओं का और भी प्रचार करते हुए उन्होंने बताया कि वेदान्त संसार का भावी धर्म होगा। उन्होंने कहा कि यद्यपि भारत अभी विदेशी शक्ति के अधीन है तब भी उसे मानवजाति के धर्म एवं विश्वास की रक्षा सावधानी पूर्वक करनी होगी। भारत को अपनी स्वतंत्रता 'महाशक्ति' (भगवती) की सहायता से प्राप्त करनी होगी।"

मनुष्य में पहले से ही स्थित ईश्वरत्व के प्रकटीकरण के लिए स्वामीजी का आह्वान उपेक्षित नहीं रहा, ऐसा रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वीकार किया है—"विवेकानन्द ने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति में ब्रह्म की शक्ति है तथा नारायण, दरिद्र एवं असहाय लोगों के माध्यम से हमारी सेवा ग्रहण करते हैं। कितना महान संदेश है! अहंकारजन्य बंधन एवं नियंत्रण से यह आत्मा की मुक्ति के लिए असीम मुक्ति की राह को प्रकाशित करता है। यह विशेष प्रकार के आचरण के निर्धारण के लिए कोई निषेधाज्ञा नहीं है और न हमारे आचार-व्यवहार के नियंत्रण के लिए कोई संकीर्ण आदेश। इस संदेश में अस्पृश्यता विरोधी भाव अन्तर्भूत है—यह

विरोध किसी राजनैतिक स्वार्थसिद्धि के आधार पर नहीं है, वरन् अस्पृश्यता जो मानव की मानवीयता के लिए अपमान स्वरूप है, उसके लिए यह संदेश विरोधीभाव युक्त है, क्योंकि अस्पृश्यता हममें से प्रत्येक के द्वारा स्वयं किया गया अपमान है।

"और चूँकि विवेकानन्द का संदेश हमारे सम्पूर्ण पौरुष के जागरण के लिए एक आह्वान है; इसने हमारे युवकों को मुक्ति के विविध मार्गों-कर्म, त्याग एवं बलिदान की ओर उन्मुख किया।"

रामकृष्ण-विवेकानन्द के संदेश राजनीति से प्रेरित नहीं थे, इस बात को दिखाने के लिए हमने बहुत प्रयास किया है, फिर भी, इसने इतने शक्तिशाली ढंग से मानवजीवन की अंतरतम गहराई को प्रभावित किया कि व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से लोग इन विचारों को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यान्वित करने के लिए बाध्य हो गये। एक बार एक आम सभा में हमें स्वर्गीय शरत्चन्द्र बोस का भाषण सुनने का अवसर प्राप्त हुआ, जो उस समय केन्द्रीय कैबिनेट स्तर के मंत्री थे। उन्होंने कहा, "जब मैं कहता हूँ कि सरकार ने श्रीरामकृष्ण के संदेश – 'सभी धर्म सत्य हैं' को स्वीकार किया है तो मैं मंत्रिमण्डल के किसी रहस्य को प्रकट नहीं कर रहा हूँ।"

यद्यपि इसे भारत के संविधान में स्थान नहीं मिला है, केवल इतना उल्लेख किया गया है कि भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है फिर भी, जब कभी भी किसी राजनयिक से धर्म-निरपेक्षता की व्याख्या करने के लिए कहा जाता है तो वे निरपवाद रूप से कहते हैं कि धर्म निरपेक्षता शब्द से तात्पर्य है—'सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार।' पंडित जवाहर लाल नेहरू जो अंतर्राष्ट्रीय संबंध के लिए पंचशील-सिद्धान्त के प्रतिपादकों में से एक थे और जो सहअस्तित्व या विभिन्न विचार धाराओं के रहते भी राष्ट्र के बीच मित्रता के राजनैतिक सिद्धान्त के व्याख्याता थे, निश्चय ही श्रीरामकृष्ण के समन्वयवादी संदेश से प्रभावित थे; भले ही कहने की भाषा अलग हो सकती है। और यह केवल कल्पना या सनक की ही बात नहीं हो सकती है, जब कोई निश्चय पूर्वक कहता है कि अविकसित देशों की सहायता के लिए विकसित देशों के कर्त्तव्यपालन की पुकार में श्रीरामकृष्ण की वाणी गूंजती है कि पतितों एवं दलितों की सेवा करो; केवल अपनी अधिक लाभदायक स्थिति से संतुष्ट मत बने रहो। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में श्रीरामकृष्ण के विचारों की व्याप्ति संभव है, क्योंकि श्रीरामकृष्ण के एक प्रमुख शिष्य स्वामी शिवानंद ने घोषित किया था कि रामकृष्णदेव के अवतरण से समस्त संसार की ब्रह्मकुण्डलिनी शक्ति जग पड़ी है।

इस विचार का समर्थन श्रीरामकृष्ण के एक दूसरे प्रमुख शिष्य स्वामी सारदानन्द ने बंगला में लिखित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'श्री श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग' में किया है। वे लिखते हैं, "पाश्चात्य शिक्षा से एकदम अछूता रहकर, भारत में प्रचलित कुसंस्कार कहाने वाले धर्मभाव के द्वारा गठित अपने जीवन में श्रीरामकृष्ण ने संसार को जो धर्म-मधु प्रदान किया, इससे पूर्व क्या उसका अमृतमय आस्वाद उसे और कभी प्राप्त हुआ है? जिस महान धर्मशक्ति का संचय कर उन्होंने अपने शिष्यवर्ग में संचारित किया है, जिसके प्रबल उच्छ्वास से बीसवीं सदी के विज्ञान के आलोक में भी लोग धर्म को एकदम प्रत्यक्ष विषय समझने लगे हैं और सब धर्मों के भीतर एक अपरिवर्त्तनशील जीता जागता सनातन धर्मस्रोत प्रवाहित होते देख रहे हैं – क्या इससे पूर्व संसार ने और कभी उस शक्ति का अभिनय देखा है? जैसे वायु एक फूल से दूसरे फूल की ओर जाती है, वैसे ही मानव जीवन क्रमशः एक सत्य से दूसरे सत्य पर पहुँचता हुआ एक अपरिवर्तनीय अद्वैत सत्य की ओर धीरे धीरे अग्रसर हो रहा है और एक दिन ऐसा आयेगा जब वह उस अनन्त, अपार अगाध मनसगोचर

सत्य की निश्चित उपलब्धि कर पूर्ण काम बन जायेगा। धर्मजगत् के एकदेशीय भाव ... अपने जीवन में सम्पूर्ण रूप से विनष्ट कर विपरीत धार्मिक मतों में यथार्थ समन्वय रूप असाध्यसाधन करना एक निरक्षर ब्राह्मण बालक के लिए कैसे संभव हुआ – क्या ऐसा चित्र और कभी किसी ने देखा है ? हे मानव, धर्मजगत् में श्रीरामकृष्ण का उच्चासन कहाँ पर प्रतिष्ठित है, यह निर्णय करना यदि तुम्हारे लिए संभव हुआ तो बताओ; किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ कहने का हम साहस न कर सके; केवल हम इतना कह सकते हैं कि उनके चरणस्पर्श से निर्जीव भारत अत्यन्त जागृत हो उठा है एवं संसार के गौरव तथा आशा के स्थल पर उसने अपना अधिकार जमा लिया है—उनके मानव शरीर धारण करने के फलस्वरूप मानव भी देवताओं का पूज्य बन गया है और उनके द्वारा जिस शक्ति का जागरण हुआ है, उस अद्भुत लीलाभिनय के आरंभमात्र को ही संसार ने स्वामी विवेकानन्द में अनुभव किया है ।"

जब १८९३ ई० में स्वामी विवेकानन्द विश्व धर्म सम्मेलन के नायक बन गये, तब संपूर्ण मानव-जाति ने संस्कृति, रंग, जाति आदि का भेद किये बगैर उन्हें उस रूप में अभिनंदित किया। अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द अपनी व्याख्यान-यात्रा के दौरान, जब एक दिन ट्रेन से उतर रहे थे, तब एक नीग्रो कुली, जो उनके स्वागत के लिए हो रहे विस्तृत आयोजन को गौर से देख रहा था; स्वामीजी के नजदीक आया और बोला, "मैंने सुना है कि हमलोगों के एक अपने आदमी महापुरुष बन गये हैं, इसलिए मैं उनसे हाथ मिलाने का सौभाग्य प्राप्त करना चाहता हूँ।" स्वामीजी ने गर्मजोशी से उस कुली का हाथ अपने हाथों में लेकर हर्षपूर्वक कहा, "धन्यवाद-धन्यवाद' मेरे भाई।" इस प्रकार वे कई बार अनेक जगहों पर भूल से नीग्रो समझ लिये गये। लेकिन उन्होंने कभी भी विरोधनहीं किया या उन्हें बतलाया कि वे नीग्रो नहीं बल्कि एक भारतीय हैं। बहुत समय बाद, जब उनके एक पाश्चात्य शिष्य ने उस घटना का उल्लेख करते हुए उनसे पूछा कि उन्होंने उन लोगों को क्यों नहीं अपना असली परिचय दिया ? तब स्वामीजी ने जबाव दिया, "क्या ! दूसरों की कीमत पर ऊपर उठना ! मैं वैसा करने के लिए धरती पर नहीं आया।"

यद्यपि ऊपर उल्लेखित अधिकांश उद्धरण स्वामीजी को एक नायक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, तथापि श्री अरविन्द ने जो इस चीज को बेहतर ढंग से जानते थे, अपनी पत्रिका 'कर्मयोगिन' में लिखा है, "वे (रामकृष्ण) हमलोगों के पीछे स्थित शक्ति तथा आगे स्थित भविष्य के प्रमाणस्वरूप हैं। इतना महान जन्म महान घटनाओं का सूत्रपात करता है। बहुत लोग आग में तपाये जायेंगे, लेकिन कुछ ही शुद्ध सोना के रूप में खरा उतरेंगे ..... स्वामी विवेकानन्द के आगमन को रामकृष्ण देव ने एक वीरोचित आत्मा के आगमन के रूप में निर्देशित किया है, जो मानो संसार को अपने दोनों हाथों में लेकर उसका स्वरूप बदलने के लिए पैदा हुआ हो। उनका आगमन संसार के लिए एक स्पष्ट संकेत था कि भारत केवल जीवित रहने के लिए ही नहीं जगा है, बल्कि उसे विश्व-विजय भी करना है।"

१८९५ ई० में स्वामीजी ने सिस्टर क्रिस्टीन तथा अन्य लोगों से कहा था कि अभी यद्यपि वाणिज्य प्रधान राष्ट्र संसार पर शासन कर रहे हैं, किन्तु शीघ्र ही सर्वहारा वर्ग (श्रमिक वर्ग) शासन में आ जायेंगे। उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की थी कि यूरोप ज्वालामुखी के मुख पर बैठा है। यदि उसे आध्यात्मिकता की बाढ़ से शमित न किया गया तो वह शीघ्र ही फूट सकता है। उन्होंने कहा, "अगली महाक्रान्ति जो नये युग का सूत्रपात करेगी, वह या तो रूस से आयेगी या चीन से। मैं स्पष्ट नहीं समझ पा रहा हूँ कि

किससे, लेकिन वह रूस से अथवा चीन से आएगी।" प्रथम विश्व महायुद्ध के दौरान यह भविष्यवाणी सच साबित हुई। टॉलसटाय स्वामीजी के प्रशंसक थे; इसके अतिरिक्त स्वामीजी पेरिस में क्रोपोटकिन से मिले थे तथा कुछ अन्य रूसी क्रांतिकारियों से अमेरिका में। यह माना जा सकता है कि इन माध्यमों से या किसी और से उनके विचार रूस में फैल गये, जो अभी भी चुपके से किन्तु अनवरत कार्य कर रहे हैं।

जब रूस के सांस्कृतिक प्रतिनिधिमण्डल के सदस्य बेलुड़मठ दर्शनार्थ आये थे,तो एक स्वामी ने जो उन्हें चारों ओर घूमकर हर चीज दिखला रहे थे, उनसे पूछा कि क्या आपलोग स्वामी विवेकानन्द का कमरा देखना पसंद करेंगे? तब एक भद्रजन जो ताशकंद के रहने वाले थे तथा नाम से मुसलमान लगते थे; आगे आये और बोले—'विवेकानन्द! मुझे उनका कमरा देखने की बड़ी इच्छा हो रही है।' इस तरह पूरा प्रतिनिधि मण्डल वहाँ गये और हरेक वस्तु को गहरी रुचि के साथ देखा।

जहाँ तक चीन की बात है, हाल के महीने में, चीन के एक इतिहासवेत्ता तथा वीजिंग विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर हुआन-सिन-चुआँग ने कलकत्ता के एशियाटिक सोसायटी हॉल में एक सभा को संबोधित करते हुए कहा कि स्वामी विवेकानन्द के समाज सम्बन्धी तथा दार्शनिक विचारों ने उनकी देशभक्ति के साथ न केवल भारत को प्रभावित किया, बल्कि उनका प्रभाव सारे संसार में व्याप्त हो गया। उन्होंने यह भी कहा कि आधुनिक चीन में स्वामी विवेकानन्द एक सम्माननीय स्थान रखते हैं। प्रो० चुआँग के अनुसार स्वामी विवेकानंद ने अमेरिका की अपनी द्वितीय यात्रा के दौरान पाया कि 'डॉलर सभ्यता' भारत के लिए अधिक सहायक सिद्ध न होगी, बल्कि यह चीन है जो भारत के उत्थान के उनके सपनों को साकार कर सकेगा।

हमने पहले ही रोमारोलाँ को उद्धृत किया है जिन्होंने भारत की तथा सम्पूर्ण विश्व की भलाई के लिए रामकृष्ण-विवेकानन्द के जीवन तथा उद्देश्य की प्रशंसा की। इससे भी पहले मैक्समूलर ने श्रीरामकृष्ण की महानता को खोज निकाला तथा 'नाइनटिंथ सेन्चुरी' पत्रिका में एक 'प्रकृत महात्मा' (ए रियल महात्मा) शीर्षक से एक लेख लिखा। कुछ वर्षों के बाद उन्होंने कुछ उपदेशों के साथ श्रीरामकृष्ण की पूरी जीवनी प्रकाशित की जिसने पाश्चात्य पाठकों को काफी प्रभावित किया।

प्राचीन कालीन पश्चिमी देशों पर भारतीय विचारों के प्रभाव को स्वीकारते हुए, जो कि एक वास्तविकता है तथा प्रसंगवश जिसे डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन अपनी पुस्तक 'इस्टर्न रिलिजन्स एण्ड वेस्टर्न थाउट्स' में पूरी तरह सिद्ध कर चुके हैं, प्रोफेसर ए० एल० बैशम ने १९५४ ई० में लिखा कि विगत अस्सी वर्षों ने थियोसॉफिकल सोसायटी, अनेक बौद्ध धर्मावलंबी संघों तथा यूरोप एवं अमेरिका की कई संस्थाओं की नींव पड़ते देखा है, जो उन्नीसवीं सदी के बंगाली संत एवं रहस्यवादी परमहंस रामकृष्ण तथा उन्हीं के समान उनके संत शिष्य स्वामी विवेकानन्द से प्रेरणा ग्रहण करने के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे।"

आप सबों पर रामकृष्णदेव के संदेश की गंभीरता, विस्तृति तथा भावी संभावनाओं की छाप अंकित करने के उद्देश्य से मैं पाश्चात्य विचारकों के कुछ उद्धरण उनके मूल्यांकन के अनुसार नीचे प्रस्तुत कर रहा हूँ।

विल डूरैन्ट : 'उन्होंने लोगों के बहुदेववाद को सहानुभूतिपूर्वक सहा तथा दार्शनिकों के अद्वैतवाद को नम्रतापूर्वक स्वीकार किया; परन्तु उनके ज्वलन्त विश्वास के अनुसार ईश्वर सर्वभूतों में आत्मरूप से व्याप्त हैं तथा उनकी सच्ची पूजा मानवजाति की प्रेममय सेवा है।'

विलीयम डिग्बी : गत शताब्दी के दौरान ब्रिटिश बौद्धिक श्रेष्ठता का सर्वोत्तम परिणाम सम्भवतः रॉबर्ट ब्राउनिंग तथा जॉन रस्किन के रूप में पाया गया था। तब भी बंगाल के निरक्षर एवं अशिक्षित रामकृष्ण, जो विद्या का 'व' अक्षर नहीं जानते थे, इस तरह बोले जैसा कि उनके युग में कोई नहीं बोला तथा क्लान्त एवं हतोत्साह मनुष्यों के समक्ष उन्होंने ईश्वर को प्रकट किया। श्रीरामकृष्ण के सामने वे (ब्राउनिंग एवं रस्किन) मात्र 'अंधेरे में भटकने वाले' जैसे थे।

लार्ड रोनैल्डशे : 'गिने-चुने लोगों ने ही गदाधर चटर्जी, इतिहास में श्रीरामकृष्ण नाम से विख्यात तथा उनके प्रधान शिष्य नरेन्द्रनाथ दत्त, स्वामी विवेकानन्द के नाम से सुपरिचित, की तुलना में बंगालियों के मस्तिष्क पर अधिक गहरी छाप अंकित की है। एक समय जब पाश्चात्य विचारों एवं रिवाजों के प्रति लोगों की धुन अपनी ऊँचाई पर थी, तब प्राच्य देशों के प्राचीन आदर्श के रूप में, महत्त्वाकांक्षा के युग में त्याग के रूप में तथा यांत्रिक विज्ञान की खोजें जब जीवन को विस्तृत रूप से जटिल बना रही थीं, तब सादगी के रूप में, ये, दोनों (रामकृष्ण विवेकानन्द) लोगों के सामने आ खड़े हुए।'

प्रो० निकोलस डि रोरिक : 'संसार के सभी भागों में रामकृष्ण का नाम श्रद्धा के साथ लिया जाता है, तथा स्वामी विवेकानन्द का भी, जो यथार्थ शिष्यत्व के प्रतीक हैं। रामकृष्ण, विवेकानन्द तथा उनके यशस्वी अनुयायियों की टोली का नाम भारत की आध्यात्मिक संस्कृति के इतिहास के सर्वाधिक विशिष्ट पृष्ठों पर अंकित हैं ···· रामकृष्ण द्वारा न केवल हितकारी उपदेशों के चिरस्थायी मूल्यों की पुष्टि हुई है, बल्कि विशेष रूप से हमलोगों के इस युग में इसकी आवश्यकता निश्चय ही असंदिग्ध है। जब आध्यात्मिकता का, जैसा कि प्रायः गलत ढंग से प्रतिपादित नियमों द्वारा खंडन किया जाता है, तब विशेषकर उसकी देदीप्यमान रचनात्मक अभिपुष्टि प्रकाश स्तंभ की तरह कीमती हो जाती है किसी को भी यह बात ध्यान में रखनी ही है कि इस मिशन की शाखाएँ अनेक नगरों में अवस्थित हैं। इन आँकड़ों के लिए अतिशयोक्ति की जरूरत नहीं है। इन शान्त विचारोत्पादक सभाओं में किसी प्रकार की पूर्व विमर्शितता या अस्वाभाविक घबराहट नहीं होती है। प्रत्येक वस्तु कोलाहल एवं भागदौड़ में गहरे रूप से अनुभव में नहीं आती है, वरन् उच्चतम परिमाण में बढ़ जाती है।'

प्रो० डॉक्टर हेलमथ वॉन ग्लासेनैप : 'पवित्र एवं श्रेष्ठ पुरुष (श्रीरामकृष्ण), जिनकी जन्म शताब्दी हमलोग इस वर्ष (१९३७ ई०) मना रहे हैं, ने महान आचार्यों एवं वैदिक ऋषियों के गंभीर ज्ञान को स्वयं के जीवन में अनुभव कर धार्मिक लोगों के कल्याण के लिए उसे नयी रोशनी में प्रदर्शित कर मानव जाति की बहुत बड़ी सेवा की है। इस बात से पूर्ण अनभिज्ञ रहकर कि एक निश्चित, मूर्त आध्यात्मिक संसार की कल्पना में जीते हुए तथा दृढ़तापूर्वक निर्देशित धार्मिक विश्वास के विभिन्न रूपों के अनुशासन का पालन करते हुए सत्य की अनुभूति संभव है; वे चेतना के ऊँचे स्तरों को बेधने में सफल हुए। मुक्ति के विभिन्न पथों के अनुसरण से जो अनुभूति प्राप्त हुई थी, उसकी क्रमबद्ध परीक्षा करते हुए, उन्होंने स्पष्ट रूप से अनुभव किया कि विभिन्न धार्मिक मतों को उनकी मान्यता के लिए तथा अपनी सीमाबद्धता पर विजय पाने का बराबर का अधिकार है। इस प्रकार उन्होंने एक प्रकार का दृष्टिकोण प्राप्त किया जो सभी प्रकार की विविधताओं के 'उस पार' था तथा उन्होंने सर्वधर्म समन्वय के भाव को स्पष्ट रूप से अनुभव किया, जिसे किसी भी तरह से चिंतन के सीमाबद्ध साधनों से नहीं समझा जा सकता है।

काउन्ट हरमन कौसरलिंग : 'जब मैं दक्षिणेश्वर के सन्त पर अपना ध्यान केन्द्रित करता हूँ तो एक प्रकार के उत्साह एवं आवेश से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। वे वस्तुतः अनादि शाश्वत सत्ता के प्रतीक लगते हैं।'

पिट्रिम ए० सोरोकिन : 'अन्ततः महान् तपस्वी, संत, यथार्थ धर्मनेता एवं रहस्यवादी ईश्वर या निरपेक्ष सत्ता के साथ एकत्व प्राप्त करने की चेष्टा में उच्चतम परोपकारिता का कार्य कर जाते हैं। संत् अंथोनी, पैकोमियस, संत जेरोम, श्रीरामकृष्ण, संत बेनडिक्ट तथा अन्य प्राच्य एवं पाश्चात्य तपस्वी, संत, रहस्यवादी, संन्यास आश्रम के संस्थापकों तथा यथार्थ धार्मिक एवं सदाचारी नेताओं ने अपनी विशेष पद्धति—अर्थात् ईश्वर के साथ एकत्व लाभ करने के प्रयास में अपनी उच्च-स्तरीय परोपकारिता को प्रकट किया है। पश्चिम के संवेदनशील विज्ञान का 'जैव अवमानव (Biological Subman) की ओर ध्यान देने के कारण स्वाभाविक रूप से मनुष्य को और अधिक परोपकारी बनाने, उसमें अतिचेतन सर्जना शक्ति पैदा करने; विशेषकर नैतिक सर्जना के सम्बन्ध में यहाँ तक कि विद्यमान अनुभव समूह की भी उपेक्षा की गयी। किसी भी चीज के अतिचेतन 'आध्यात्मिक' या 'धार्मिक' के प्रति अपने भौतिकवादी यांत्रिक तथा प्रयोगाश्रित पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के कारण इस छद्म-विज्ञान ने बहुत हद तक लाओत्से एवं बुद्ध, क्राइस्ट एवं संतपाल, असीसी के संत फ्रांसिस एवं श्रीरामकृष्ण, योगी एवं तपस्वी, रहस्यवादी, संन्यास आश्रम के संस्थापकों, दूसरे प्रसिद्ध परोप-कारी लोगों तथा नीति शिक्षकों की अवहेलना की। असंख्य लोगों को परोपकारी बनाने की क्रिया में जो उपलब्धि इन लोगों ने प्राप्त की, उसकी तुलना में विज्ञानवादी शिक्षकों द्वारा जो पूर्ण 'समाजीकरण' की क्रिया हुई है वह बहुत कम महत्त्व रखती है। 'लोकोत्तर प्रेम' जो उनलोगों (साधु-सन्तों) द्वारा आचरित हुआ, उसकी तुलना में उपयोगितावादी मानवहितैषियों की दयालुता तथा उत्तम मिलनसारिता परोपकारिता की अनेक हल्की छाया है।'

अर्नाल्ड टॉयनबी : 'आज से पचास या सौ वर्ष बाद लिखी जाने वाली इतिहास की पुस्तकों में मैं नहीं समझता हूँ कि श्रीरामकृष्ण का नाम छूटा हुआ रहेगा·····मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत तथा विश्व के भावी इतिहास को आधुनिक भारत को व्यावहारिक उपलब्धि के सम्बन्ध में कहने के लिए बहुत बातें होंगी। मैं विशेषकर सामुदायिक विकास कार्य के बारे में सोच रहा हूँ। यह हजारों भारतीय गाँवों के कृषकों का यह अनुभव कराने में सहायक सिद्ध हो रहा है कि वे अपने जीवन को अपने ही प्रयासों से बेहतर बना सकते हैं। उन्हें बेहतर बनाने का अर्थ है, आध्या-त्मिक रूप से बेहतर बनाने के साधन द्वारा भौतिक दृष्टि से बेहतर बनाना और यह हमें धर्म की ओर तथा श्रीरामकृष्ण की ओर वापस ले आता है।'

अब और उद्धरण जोड़कर यह सिद्ध करने की जरूरत नहीं है कि विदेश के बुद्धिजीवियों पर इस नवीन संदेश का बहुत गहरा असर हुआ है। इसका मूल्यांकन करना अथवा मानव समाज पर इसके वास्तविक असर के सम्बन्ध में ठोस उदाहरण प्रस्तुत करना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। फिर भी, आइये, हम कुछ उदाहरणों का उल्लेख करें।

कुछ वर्ष पूर्व पोप भारत भ्रमण पर आये थे तथा बंबई में कई धर्मों के नेताओं से मिले। बाद में उन्होंने कहा कि उन्होंने अपने श्रोताओं के चेहरे पर स्पष्ट रूप से आध्यात्मिकता की चमक देखी। ऐसी घोषणा की कल्पना एक दशक भी पूर्व एक ऊँचे कैथॉलिक व्यक्ति के मुख से नहीं की जा सकती थी। १५ सितम्बर, १९६८ को डि पॉल यूनिवर्सिटी, शिकागो के धर्मशास्त्र के एक कैथॉलिक प्रोफेसर कैम्पबेल ने कहा, "हम कुछ अनुमान कर

नरदेव श्रीरामकृष्ण (३)

-- स्वामी ब्रह्मानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

संशय राक्षस नाश महास्त्रम्

श्रीरामकृष्ण के लिए स्वामी विवेकानन्द ने शीर्षकोक्त विशेषण के अतिरिक्त "गत संशय" शब्द का भी उपयोग किया है। पातंजल योग सूत्र में संशय को योग का एक अन्तराय कहा गया है। अवतारत्व के संशयनाशत्व को समझने के लिए पहले हमें संशय के स्वरूप की जानकारी का होना आवश्यक है।

संशय

"उभयदिक्स्पर्शी ज्ञान" संशय कहलाता है। एक ही बात के परस्पर विरोधी पक्षों की खींचातानी ही संशय है। ईश्वर है या नहीं—इस प्रश्न में "ईश्वर है" यह ज्ञान और "ईश्वर नहीं" यह ज्ञान, जब ये दोनों परस्पर विरोधी ज्ञान एक साथ किसी व्यक्ति में रहें तो इसे हम संशय की स्थिति कहेंगे। चूँकि सभी संशय से परिचित हैं, अतः अधिक उदाहरण देना आवश्यक नहीं है। यहाँ हम केवल धर्म और आध्यात्म विषयक संशयों की समस्या जो आज के संदर्भ में अधिक जटिल हो गयी है तथा श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रस्तुत समाधानों की चर्चा करेंगे।

अवतार का आगमन जिन उद्देश्यों के लिए होता है, उनमें से एक जीवन के उद्देश्य, धर्म की आवश्यकता सम्बन्धी शंकाओं, भ्रम और संशयों को दूर करना भी है। अतीन्द्रिय विषयों के प्रति सच्चा विश्वास आसानी से नहीं उपजता और परंपरागत रूप में प्राप्त अन्धविश्वास जीवन की मौलिक समस्याओं को सुलझाने में पर्याप्त नहीं होता। ऐसे में अनेक लोगों के मन में प्रश्न उत्पन्न होते हैं; ईश्वर है या नहीं? धार्मिक जीवन की सार्थकता क्या है? किसी भी सत्य को जानने के लिए सच्ची जिज्ञासा वृत्ति से किये गये प्रश्न आवश्यक हैं लेकिन दो ऐसी भी परिस्थितियाँ होती हैं जो ज्ञानार्जन में बाधा बन जाती हैं: (१) विपर्यय—अर्थात् विपरीत ज्ञान; ईश्वर की सत्ता नहीं है, धर्म निरर्थक है इत्यादि। और (२) संशय—मन की डांवाडोल स्थिति, कुछ भी निर्णय कर पाने में असमर्थता।

संशय भी तीन प्रकार के कहे गये हैं: (१) प्रमेयगत, (२) प्रमाणगत, (३) प्रमातागत। प्रमेयगत संशय का अर्थ है ईश्वर दर्शन, निर्वाण, ब्रह्मज्ञानादि के विषय में संशय। ईश्वर हैं या नहीं, यदि हैं, तो उनका दर्शन किया जा सकता है या नहीं; मोक्ष जैसी कोई अवस्था है या नहीं? ईश्वर यदि हैं तो वे मानव शरीर धारण करके अवतरित होते हैं या नहीं--ये प्रमेयगत संशय के दृष्टांत हैं। प्रमाणगत संशय का अर्थ है उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन के विषय में संशय। मोक्ष ज्ञान से प्राप्त होता है या कर्म से? या दोनों के द्वारा? इत्यादि। प्रमातागत संशय का अर्थ है स्वयं के स्वरूप तथा सामर्थ्य के विषय में संशय। मैं उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर सकूँगा या नहीं? आदि।

संशय रूपी राक्षस के गीता में दो पैर बताये गये हैं: अज्ञान और अश्रद्धा।

"अज्ञश्चाश्रद्धधानस्य संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥"

इस श्लोक में संशय के तीन दुष्परिणामों के उल्लेख के साथ ही साथ उसे दूर करने के उपाय का संकेत भी दिया गया है। श्रद्धा के बिना भक्ति

तो सम्भव है ही नहीं। चूंकि श्रद्धा ज्ञान का साधन है, अतः संशय के कारण ज्ञान भी नहीं हो सकता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संशय के फलस्वरूप साधक अपनी मानसिक शक्ति को केन्द्रित नहीं कर पाता। इसीलिए उसे किसी भी उद्देश्य की पूर्त्ति में, चाहे वह इस लोक का सुख हो या परलोक का, सफलता नहीं मिलती। इसीलिए भगवान् अर्जुन को ज्ञानरूपी तलवार से इस अज्ञानजन्य संशय को नष्ट करने को कहते है :

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥

श्रद्धा सहित शास्त्रों के श्रवण मनन के द्वारा साधक स्वयं अपने प्रयास से संशय दूर कर सकता है। इसके अतिरिक्त संशयहीन, स्थिरमति उपदेष्टा, गुरु या सन्त के सहवास से संशय आसानी से नष्ट किया जा सकता है। अगर यह प्राप्त न हो तो ईश्वर-प्रणिधान या भगवत्शरणागति संशय नाश का एक अन्य उपाय है। यों तो संशय का सम्पूर्ण नाश आत्मसाक्षात्कार या भगवद्दर्शन होने पर ही होता है; लेकिन उपर्युक्त उपायों से उसका पर्याप्त मात्रा में क्षय किया जा सकता है।

संशयनाशक श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण एक पूर्ण संशय रहित "गतसंशय" उपदेष्टा थे। लेकिन साधक के रूप में उन्हें भी संशयापन्न अवस्था से गुजरना पड़ा था। काली मन्दिर के पुजारी के रूप में काय करते समय उनके मन में यह प्रश्न उठा था कि जिस मूर्त्ति की मैं पूजा कर रहा हूँ वह चिन्मय है या मृण्मय। क्या वह केवल पत्थर की एक आकृति मात्र ही है या उसके पीछे कोई जीवन्त चैतन्य सत्ता, जगन्माता की सत्ता भी है। इस संशय का नाश श्रीरामकृष्ण ने आन्तरिक तीव्र प्रार्थना अर्थात् ईश्वर-प्राणिधान की पद्धत्ति से किया था। परवर्त्ती काल में भी जब कभी उनके जीवन में संशय उपस्थित होता तो वे यही कार्य अर्थात् भगवत् शरणागति का अवलम्बन लिया करते थे। एक बार नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) ने श्रीरामकृष्ण को कह दिया कि उसका चिन्तन करते करते उनकी भी दशा जड़भरत जैसी होगी जिसे मृत्यु के समय हिरण का स्मरण करने से हिरण का जन्म ग्रहण करना पड़ा था। इससे श्रीरामकृष्ण बालक की तरह चिन्तित हो गये और सीधे मन्दिर में माँ जगदम्बा के पास पहुँच गये। माँ से प्रार्थना करने पर उन्हें समाधान प्राप्त हुआ कि वे नरेन्द्रादि में भगवान को देखते हैं; अतः उनकी अवस्था जड़भरत सी नहीं होगी। श्रीरामकृष्ण का जगन्माता या सर्वज्ञ परमात्मा के साथ ऐसा तादात्म्य था कि वहाँ संशय की कोई सम्भावना ही नहीं थी। यदि संशय कभी उठता भी तो वह तत्काल ही नष्ट हो जाता था, जिसका दृष्टान्त ऊपर दिया गया है।

श्रीरामकृष्ण का एक महत् कार्य था, आधुनिक संशयवादी विचारधारा के प्रतीक स्वामी विवेकानन्द के संशयों को दूर करना और उनके माध्यम से अपने आविर्भाव के एक मुख्य उद्देश्य की पूर्त्ति करना। स्वामी विवेकानन्द युवक नरेन्द्र के रूप में जब सर्व प्रथम श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आये तब वे अपनी संस्कारज ईश्वर सम्बन्धी विश्वास और पाश्चात्य अज्ञेयवादी तथा भौतिकवादी विचारधारा के बीच संघर्ष से उत्पन्न संशय से ग्रस्त थे। उनका श्रीरामकृष्ण से पूछा गया पहला प्रश्न ही था; "क्या आपने ईश्वर को देखा है ?" श्रीरामकृष्ण का उत्तर भी उतना ही स्पष्ट तथा सीधा था : "हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है, ठीक उसी तरह जिस तरह तुम्हें देखता हूँ, बल्कि उससे कहीं अधिक स्पष्टतर रूप से। अगर तू चाहता है तो तू भी उन्हें देख सकता है, लेकिन मेरे कहे अनुसार करना होगा।" लोग स्त्री पुत्र के लिए घड़ों आँसू बहाते हैं; ईश्वर के लिए कोई नहीं रोता। यदि कोई तीन दिन ईश्वर के लिए रोये तो उसके दर्शन हो सकते हैं..." इत्यादि। इस उत्तर में श्रीरामकृष्ण ने प्रमेयगत, प्रमाणगत तथा प्रमातागत, तीनों प्रकार के संशयों

का निराकरण प्रस्तुत किया है। लेकिन स्वामी विवेकानन्द इस मौखिक उत्तर से, चाहे वह कितना ही प्रभावशाली और मर्मस्पर्शी क्यों न हो, सन्तुष्ट होने वाले नहीं थे। वे तो ईश्वर के अस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहते थे। श्रीरामकृष्ण में इसके प्रदर्शन की भी क्षमता थी। उन्होंने जब स्वामीजी को सर्वप्रथम स्पर्श किया तो उनके सामने से समस्त जगत् विलुप्त होने लगा। स्वयं उनका शरीर और मन, एक अखंड सत्ता में विलीन होने लगे। इस अनुभव को धारण करने में असमर्थ हो वे चिल्ला उठे। अन्य एक बार उन्होने इस विचार पर कि कटोरी थाली आदि सभी कुछ परमेश्वर है, संशय प्रकट करते हुए, उसे हास्यास्पद बताया। लेकिन इस बार भी श्रीरामकृष्ण के स्पर्श से उन्हें सचमुच सर्वत्र सभी वस्तुओं में ब्रह्म के, परमात्म सत्ता के, दर्शन होने लगे।

आध्यात्मिक जगत् कपोलकल्पित, असत्य अथवा ढकोसलावादी नहीं है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण स्वयं श्रीरामकृष्ण का जीवन था। ईश्वर दर्शन जैसी उच्चतम अनुभूति से लेकर सत्य, अहिंसा, त्याग आदि व्यावहारिक जीवन की बातें सभी रामकृष्ण के जीवन में मूर्त हो गयी थीं। श्रीरामकृष्ण का जीवन ही धर्म का एक जीता जागता प्रमाण था। स्वामी विवेकानन्द ने प्रत्येक पद पर प्रत्येक विषय में श्रीरामकृष्ण के जीवन को परखा, जाँचा और अन्त में वे धर्म के छोटे बड़े सभी विषयों में संशय रहित हो गये थे। रुपए को स्पर्श करने से हाथ जलता है, श्रीरामकृष्ण के इस कथन की सत्यता को जानने के लिए स्वामीजी ने उनके बिस्तर के नीचे रुपया रखकर उनकी परीक्षा की थी। किसी धार्मिक दिखने वाले व्यक्ति के हाथ का छुआ जल श्रीरामकृष्ण पी नहीं सके है यह देखकर स्वामीजी ने उस व्यक्ति विशेष के चरित्र के बारे में अनुसन्धान कर पता लगाया कि उसका चरित्र अच्छा नहीं था। इस तरह के अनेक दृष्टान्त हैं।

श्रीरामकृष्ण की अन्त्यलीला के समय स्वामी विवेकानन्द के मन में यह प्रश्न पुनः उदित हुआ था कि क्या वे सचमुच अवतार हैं? अगर इस समय वे बोलें तो मैं मानूँगा। गले के कैंसर से जर्जरित, बोलने तक में असमर्थ श्रीरामकृष्ण उनके इस मनोगत भाव को जानकर तत्काल गर्जन कर उठे "अभी भी अविश्वास, अभी भी अविश्वास! जो राम, जो कृष्ण, वही अब रामकृष्ण हुआ है। तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं; प्रत्यक्ष" अवतार के सम्बन्ध में नरेन्द्र का संशय इस तरह दूर हुआ था।

स्वामीजी श्रीरामकृष्ण की परीक्षा लेने का कार्य सारा जीवन करते रहे और यह देखकर वे सचमुच अचंभित हो गये थे कि श्रीरामकृष्ण के मुँह से जाने-अनजाने में निकली छोटी बड़ी सभी बातें भविष्य में अक्षरशः सत्य हुई थीं। यही कारण है कि उन्होंने श्रीरामकृष्ण को निस्संकोच रूप से "संशय राक्षस नाश महास्त्रम्" की संज्ञा दी।

श्रीरामकृष्ण की एक और विशेषता यह है कि उन्होंने हिन्दू धर्म में प्रचलित लगभग सभी साधना पद्धतियों को स्वीकार कर साधनाएँ की। यही नहीं इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म की साधनाएँ भी करके उन सभी धर्मों की सत्यता का प्रमाणित करके उनमें सम्भावित सभी संशयों का नाश किया। "एकं सदविप्रा बहुधा वदन्ति।" तथा रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनाना पथजुषां नृणामेको गम्यः त्वमसि पयसामर्णव इव॥ इत्यादि शास्त्रों में लिपबद्ध है अवश्य, लेकिन श्रीरामकृष्ण ने ही अपने जीवन काल में उन्हें संशय रहित आधार प्रदान किया।

श्रीरामकृष्ण की विभिन्न व्यक्तियों के संशयों को नष्ट करने की शैली भिन्न-भिन्न थी। नरेन्द्र को जहाँ उन्होंने विचार, तर्क एवं व्यक्तिगत परीक्षण के लिए प्रोत्साहित किया वहाँ मास्टर महाशय को तर्क न करने की सलाह दी। ईश्वर में अविश्वासी व्यक्ति के लिए भी उनके पास सुझाव था। उन्हों

उससे कहा कि वह इस तरह ईश्वर से प्रार्थना करे, "हे ईश्वर, यदि तुम हो तो मेरी प्रार्थना सुनो" इत्यादि। इस तरह उन्होंने उसकी व्यक्तिगत अविश्वास रूपी निष्ठा की रक्षा करते हुए उसे ईश्वर की ओर प्रेरित किया।

इस तरह हम देखते हैं कि अवतारत्व के दैवी पक्ष को प्रकट करने वाले तीनों विशेषण श्रीरामकृष्ण में पूर्ण रूप से फलीभूत हुए हैं।

रामचरितमानस में गुरुतत्त्व

"दलन मोह तम सो सप्रकासू'

स्वामी शशांकानन्द
प्राचार्य,—रामकृष्ण मिशन समाज सेवक शिक्षण मन्दिर
बेलुड़ मठ, हावड़ा।

गुरुदेव का आश्रय लेने की नितान्त आवश्यकता क्यों है, इस पर विचार करने से हमारे सम्मुख यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जो व्यक्ति विशेष हमारे निर्दिष्ट पथ को प्रकाशित करके यथार्थ ज्ञान करा दें तथा अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर दें, वे ही गुरु हैं। गुरुगीता में भगवान् शंकर पार्वतीजी से कहते हैं :

गुकारस्त्वन्धकारः स्याद् रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानं ग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥

—'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' का अर्थ है तेज (प्रकाश) अर्थात् अज्ञानांधकार का नाश करने वाला तेजरूप ब्रह्म ही गुरु है, इसमें संशय नहीं है।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी गुरुवन्दना में कहते हैं :

श्री गुरु पद नख मनिगन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू॥

—गुरुदेव के चरण-नखों की ज्योति, मणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण मात्र से ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट कर देता है। वह जिसके हृदय में आ जाय, वही भाग्यवान है।

यहाँ अज्ञान को अंधकार की उपमा क्यों दी गयी है, इस बात पर तनिक विचार करें। यदि कोई व्यक्ति अन्धकार में घुस जाए तो उसे दो बातें प्रतीत होती हैं। एक तो उसे उस स्थान में मौजूद वस्तुएँ नहीं दीखतीं जैसे 'रज्जु' और दूसरी जो वस्तुएँ वहाँ नहीं हैं उनकी उपस्थिति का भान होता है, जैसे भूत, सर्प इत्यादि। अज्ञान या अज्ञान जनित मोह का प्रभाव भी इसी प्रकार होता है। अज्ञान की दो शक्तियाँ होती हैं :

—आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति। आवरण शक्ति अन्धकार की भाँति सत्य को ढँक देती है और जीव अपने आत्मस्वरूप को नहीं देख पाता है और विक्षेपशक्ति सत्य में भ्रम उत्पन्न करती है जिसके कारण वह अपने को शरीर, मन इत्यादि समझने लगता है तथा शरीर, मन के कष्टों को अपना कष्ट मानकर सुखी-दुखी होता रहता है; शरीर की मृत्यु को वह अपनी मृत्यु समझ बैठता है। यही मोह है। इसीलिए अज्ञान और तज्जनित मोह को अन्धकार की उपमा दी है। गुरुगीता

में इसे अज्ञान तिमिर कहा है। इस अज्ञान तिमिर से अन्धा हुआ जीव अपने को जन्म-मृत्यु वाला समझकर अनेक जन्मों को प्राप्त होता रहता है और भव-सागर में डुबकियाँ मारता रहता है।

रामचरितमानस में अज्ञानी व्यक्ति का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

माया बस मतिमंद अभागी।
हृदयँ जमनिका बहुविधि लागी॥

—'जो माया के बस, मन्द बुद्धि और भाग्य हीन हैं और जिनके हृदय पर अनेकों प्रकार के पर्दे पड़े हैं।'

ते सठ हठ बस संसय करहीं।
निज अज्ञान राम पर धरहीं॥

—'वे मूर्ख हठ के वश होकर अपने अन्तर में बैठे हुए श्रीराम अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप दिव्यात्मा के प्रति संशय करते हैं। आनन्दकंद भगवान् को न देख पाने के कारण ही अपने को देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि धर्मवाला मान बैठते हैं। उनका आचरण बड़ा ही विचित्र हो उठता है।

नौकारूढ़ चलत जग देखा।
अचल मोह बस आपुहि लेखा॥

उसे सभी कुछ भूल दीखता है। जैसे नाव में बैठा हुआ व्यक्ति चलायमान होते हुए भी अपने को भ्रमवशतः अचल देखता है और जगत् को चलाय मान देखता है।

काम क्रोध मद लोभरत गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥

'— काम, क्रोध, मद और लोभ में रत हुए तथा दुःख रूपी घर में आसक्त हुए व्यक्ति श्री रघुनाथ जी को तत्त्व से कैसे जानेंगे ? वे मूर्ख तो अन्धकार रूपी कुएँ में पड़े हुए हैं।

ऐसा आत्मविस्मृत व्यक्ति अपने को शरीर, मन और इन्द्रिय मानकर घोर संसार रूपी अंधकार में कीड़ों की तरह किलबिलाता रहता है।

किन्तु जब उसके भाग्य का उदय होता है तब श्री गुरु की प्राप्ति होती है, और उनकी कृपा से ज्ञान-ज्योति हृदय में प्रवेश कर जाती है। अन्धकार दूर होकर सत्य का यथार्थ रूप प्रगट हो जाता है। रामचरितमानस में गोस्वामी जी कहते हैं :

उघरहिं विमल बिलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥

अर्थात् श्री गुरु के चरण-नखों की ज्योति हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष दुःख मिट जाते हैं :

भगवान् श्रीकृष्ण को सद्गुरु रूप में प्राप्त कर अर्जुन का मोहरूपी अन्धकार विलीन हुआ था, उसकी स्मृति लौटी थी और उसने अपने आत्म-स्वरूप को जान लिया था। गत संदेह अर्जुन कह उठा था —

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

—"हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो चुका है और स्मृति लौट आयी है अर्थात् यथार्थ ज्ञान को प्राप्त हुआ हूँ। अब मैं संदेह-मुक्त हो चुका हूँ। अब मैं आपके आदेश का पालन करूँगा।"

'गुरु' शब्द का अर्थ बताते हुए गुरु गीता में कहा गया है :—

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुण भासकः।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म माया भ्रान्ति विमोचकः॥

'—गुकार (गुरु शब्द का) प्रथम वर्ण माया आदि गुणों का भास कराने वाला है, 'रु' कार— यह द्वितीय वर्ण ब्रह्म से सम्बद्ध माया जो भ्रम उत्पन्न करती है, उसका नाश करने वाला है।'

शिष्य को मोहान्धकार से मुक्त कर उसके हृदय में ज्ञान-प्रकाश का संचार करना, यही यथार्थ गुरु का कार्य है।

रामचरित मानस के प्रारम्भ में ही गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीगुरु की वन्दना करते हुए इस प्रकार कहते हैं :

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु वचन रबि कर निकर॥

'—मैं श्री गुरुदेव के चरणकमल की वन्दना करता हूँ जो कृपा के सागर और मनुष्यरूप में श्रीहरि ही हैं और जिनके वचन महामोहरूपी घने अन्धकार को नाश करने के लिए सूर्य-किरणों के समूह हैं॥'

स्वामी विवेकानन्दजी ने श्रीगुरु की उपमा सूर्य के प्रकाश से की है। उन्होंने कहा है, "सूर्य को प्रकाश में लाने के लिए मशाल की आवश्यकता नहीं होती। उसे देखने के लिए हमें दिया नहीं जलाना पड़ता। जब सूर्योदय होता है, तो हम अपने आप जान जाते हैं कि सूरज उग आया। इसी प्रकार जब हमारी सहायता के लिए गुरु का आगमन होता है, तो आत्मा अपने आप जान लेती है कि उस पर अब सत्य के सूर्य की किरणें पड़ने लगी हैं।"

अमिय मूरिमय चूरन चारू

अमिय मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू॥

श्रीगुरुदेव के चरण कमल का रज संजीवनी जड़ी का सुन्दर चूर्ण है जो समस्त भवरोगों के परिवार का नाश करने वाला है।

शारीरिक रोगों से कौन परिचित नहीं? जिसने भी शरीर ग्रहण किया है उसने रोग का अनुभव अवश्य किया है। कहा गया है, "शरीरं व्याधिमन्दिरम्"- अर्थात् शरीर रोगों का घर है। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, 'रोग शरीर धारण करने का कर (Tax) है, जो सभी शरीरधारियों को देना पड़ता है। चिकित्सा द्वारा रोगों की निवृत्ति होती है। वैद्य या डाक्टर के उपदेश के अनुसार औषधि सेवन करना ही रोगमुक्ति का एक मात्र उपाय है।

शारीरिक रोगों की भाँति ही मानस रोग होते हैं। इन सब रोगों के मूल में एक महाभयंकर रोग है जिससे सब रोगों की उत्पत्ति हुई है। वह है 'भव-रोग'। भवरोग का विस्तृत परिवार है। रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने इस परिवार का वर्णन इस प्रकार किया है :

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।
काम बात कफ लोभ अपारा॥
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥

मोह ही सब रोगों की जड़ है। उन व्याधियों से पुनः बहुत प्रकार के शूल होते हैं। काम वात है लोभ बढ़ा हुआ कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती को जलाता रहता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई।
उपजइ सन्यपात दुखदाई॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना।
ते सब सूल नाम को जाना॥

यहि कहीं ये तीनों भाई (वात, पित्त, और कफ —काम, क्रोध और लोभ) परस्पर मिल जायँ तो महादुखदायी सन्निपात रोग उपजाता है। अधिक श्रम से प्राप्त होने वाली विषय-कामनाएँ ही विभिन्न शूल हैं। इन शूलों के नाम कौन जानता है?

नमता दादु कंडु इरषाई।
हरष बिषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोई छई।
कुष्ठ दुष्टता मन कुटिलई॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ।
दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी।
त्रिबिध ईषना तरुण तिजारी॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका।
कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥

ममता दाद और ईर्ष्या खुजली है। हर्ष-विषाद गले के रोग की अधिकता है, पराये सुख को देख कर जो जलन होती है, वही क्षय है। दुष्टता और मन की कुटिलता ही कोढ़ है। अहंकार अत्यन्त दुख देने वाला गाँठ का रोग है। दम्भ, कपट, मद, मान नसों का रोग है। तृष्णा बड़ा भारी जलोदर रोग है। तीन प्रकार की प्रबल इच्छाएँ (पुत्र, धन और मान) तिजारी हैं। मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं। इस प्रकार अनेक बुरे रोग हैं, जिन्हें कहाँ तक कहूँ।

शारीरिक रोगों के निवारण के लिए विभिन्न औषधियों का प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेदिक ऐलोपैथिक, होम्योपैथिक इत्यादि नाना पद्धतियों ने असंख्य औषधियाँ निर्धारित की हैं। किन्तु इन मानस रोगों की औषधि कहाँ मिले ? इसकी भी विभिन्न चिकित्सा पद्धतियाँ हैं। उन पद्धतियों ने इन रोगों के विभिन्न उपाय बताए है जैसे नियम, धर्म, जप-तप, उत्तम आचरण इत्यादि, किन्तु रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी का मत बड़ा ही विलक्षण है।

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरि जान॥

—काकभुषुण्डि जी गरुड़जी से कहते हैं कि नियम, धर्म, उत्तम आचरण, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप दान तथा और भी करोड़ों औषधियाँ हैं। परन्तु उनसे ये रोग नहीं जाते। यह भवरोग का परिवार बड़ा ही विकट रोग है उसका निवारण तो तब ही हो सकता है जब योग्य वैद्य की शरण में जाएँ और उसकी दी हुई संजीवनी बूटी का प्रयोग किया जाए। श्री गुरुदेव ही वह वैद्य हैं जो जीव को भवसागर से पार करते हैं, उनके वचन में विश्वास ही उपाय है। "सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा" उनकी शरण में जाने से ही शिष्य को भवरोग की महा-औषधि प्राप्त होती है। मानस में इस महा-औषधि की महिमा गायी गयी है।

बंदउँ गुरुपद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू॥

तुलसीदास जी कहते हैं, "मैं श्रीगुरुदेव के चरण कमलों की रज की वन्दना करता हूँ। यह रज सुन्दर, स्वाद, सुगन्ध और अनुराग रूपी रस से पूर्ण है। यह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुन्दर चूर्ण है जो सम्पूण भवरोगों के परिवार का नाश करने वाला है।

युगाचार्य स्वामी विवेकानन्दजी ने भी सद्गुरु कृपा को ही भव-रोग के निवारण का साधन बताया है। वे कहते हैं,

"वही सच्चा गुरु है, जो इस मायारूपी संसार के पार ले जाता है, जो कृपा करके सब मानसिक आधि-व्याधि विनष्ट करता है।"

सब कुछ मन का ही तो खेल है ! जब मन रूपी दर्पण पर मैल जम जाता है तो अपना वास्तविक रूप तो दीखता ही नहीं वरन् दूसरी विकृति दिखाई देती है। अर्थात् ईश्वर ही संसार के रूप में दिखाई देता है। किन्तु मन का दर्पण साफ होने पर उसमें प्रभु का स्वरूप– आत्मस्वरूप दिखाई देता है। और उस मन-दर्पण को साफ करने की शक्ति तो श्री गुरुदेव के चरणों की रज में ही है। रामचरितमानस में इसीलिए गोस्वामी जी ने कहा है,

"जन मन मंजु मुकुर मल हरनी।"

अर्थात् वह रज भक्तजन के मनरूपी सुन्दर दर्पण के मैल को दूर करने वाली है।

उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

—डॉ० नन्दिता भार्गव
अजमेर

बंगला भाषा की सुविख्यात मासिक पत्रिका 'वसुमति' के प्रतिष्ठाता श्री उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय श्रीरामकृष्ण के विशेष कृपाप्राप्त परम भक्त थे। उनका जन्म १८ फरवरी १८६८ को कलकत्ता शहर के अहीरी टोला नामक क्षेत्र के, नीमू गोस्वामी लेन में, मामा के घर में हुआ था। उनके पिता श्रीपूर्णचन्द्र मुखोपाध्याय हुगली जिले के बलागेड़ा नामक ग्राम के निवासी थे। वे एक कुलीन ब्राह्मण थे। उस युग में कुलीन ब्राह्मणों में बहु विवाह का प्रचार था। अनेक पत्नियाँ होने के कारण, आर्थिक कारणवश, इन कुलीन ब्राह्मणों की कई पत्नियों को तो दुर्भाग्यवश मायके में ही जीवन व्यतीत करना पड़ता था। उन्हें ससुराल का सुख कदापि देखने को नहीं मिलता था। उपेन्द्र की माता भी ऐसी ही एक दुखी अबला नारी थीं जिन्होंने अपना श्वसुर गृह देखा तक नहीं था। अतः बालक उपेन्द्र का लालन पालन मामा के घर ही हुआ।

मामा की आर्थिक अवस्था ठीक न होने के कारण, उपेन्द्र एक साधारण से स्कूल में पढ़ने गये। यह स्कूल श्याम बाजार के यदु पंडित चलाते थे। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद ही उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी। इस पर मामा ने उनका तिरस्कार कर कुछ धनोपार्जन करने को कहा। दो एक दिन के प्रयास से ही उपेन्द्र को एक औषधि की दुकान में बोतल आदि धोने और बोतलों में लेबल चिपकाने की नौकरी मिल गयी। कुछ समय पश्चात् जब उपेन्द्र को ज्ञात हुआ कि डॉक्टर का नैतिक चरित्र ठीक नहीं है तो उन्होंने नौकरी छोड़ दी। तत्पश्चात् किन्हीं वृन्दावन बसाक नामक व्यक्ति की पुस्तकों की दुकान में पाँच रुपये मासिक वेतन पर उन्हें नौकरी मिल गयी। यहाँ उनका कार्य था—झाड़ू लगाना, पुस्तकों को सजाना तथा बेचना।

कुछ समय बाद बृन्दावन बसाक अपनी दुकान को बेच देना चाहते थे। अतः उपेन्द्र स्वयं ही उस दुकान को क्रय करने की सोचने लगे। परन्तु इस कार्य के लिए पचहत्तर रुपये की आवश्यकता थी। उपेन्द्र ने अपने मामा से ही धन की याचना की। मामा ने मना कर दिया। तब मामी की ही सहायता से किसी भाँति पचहत्तर रुपये का ऋण जुटाकर उन्होंने उस दुकान को खरीद लिया। दो तीन महीने में ही अपने अध्यवसाय से उन्होंने सारा ऋण चुका दिया। उस समय एक या दो पैसे मूल्य की कविता की पुस्तकें खूब बिकती थीं। ये पुस्तकें 'चुटकी' कहलाती थीं। इनमें नाना प्रकार की लोकप्रिय कविताएँ रहती थीं। बुद्धिमान उपेन्द्र ने इस प्रकार की कई छोटी-छोटी 'चुटकी' पुस्तकें खरीद कर, उन्हें मिलाकर बड़ी पुस्तकों के रूप में छापकर बेचना प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त वह अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें भी बेचने लगे। श्रीरामकृष्ण के भक्त देवेन्द्र नाथ मजूमदार के अग्रज सुरेन्द्रनाथ मजूमदार कवि थे। उनके समस्त प्रकाशन भी उपेन्द्र ही अपने पुस्तकालय में बेचने लगे। इस प्रकार उपेन्द्र की मासिक आय में वृद्धि होने लगी।

सुरेन्द्र नाथ मजुमदार की पुस्तकों को बेचते समय वे कवि के कनिष्ठ भ्राता देवेन्द्र नाथ मजूमदार के सम्पर्क में आये। देवेन्द्र के घर के समीप ही

ठाकुर के अन्य गृहस्त भक्त अधरलाल सेना भी रहते थे। आहीरीटोला में देवेन्द्र तथा अधर के निवास स्थान में ठाकुर समय-समय पर आया करते थे। सम्भवतः वहीं कहीं पर, किसी शुभ क्षण में, उपेन्द्रनाथ का ठाकुर के साथ प्रथम साक्षात्कार हुआ था। ठाकुर से सम्मोहित हो उपेन्द्र ने दक्षिणेश्वर में आना जाना प्रारम्भ कर दिया। उपेन्द्र के शुभ लक्षणों को देखकर ठाकुर भी उनकी ओर आकृष्ट हुए और उनका परिचय प्राप्त करना चाहा। उपेन्द्र ने जब अपना परिचय दिया तो ठाकुर ने कहा था, "ओ, तुम ब्राह्मण हो ! क्या तुम्हारे घर देवता की नित्य पूजा होती है?" उपेन्द्र ने उत्तर दिया था, "हाँ, नारायण की नित्य पूजा होती है। कृपा परवश ठाकुर ने उपेन्द्र से जिज्ञासा की, "एक दिन नारायण का प्रसाद खिला सकते हो क्या ?" उपेन्द्र ने हाँ कहा। अब वे यही चिन्ता करने लगे कि कैसे यह सम्भव होगा ? उनकी मामी किस प्रकार इस बात को स्वीकार करेंगी। बहुत सोच विचार कर उन्होंने एक दिन मामी को कह ही दिया कि दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में एक सद्ब्राह्मण रहते हैं। वे नारायण का प्रसाद पाने को कह रहे थे। ब्राह्मण की आकांक्षा की बात सुन कर मामी सहज ही में सहमत हो गयी और एक दिन उपेन्द्र प्रसाद लेकर दक्षिणेश्वर में उपस्थित हो गये। उस समय नरेन्द्र, राखाल आदि प्रमुख युवक भक्तगण प्रसाद पाने बैठे थे। प्रसाद सहित उपेन्द्र को देखकर कृपानिधान ठाकुर ने सानन्द उसे ग्रहण किया और नरेन्द्र आदि को भी परोस देने को कहा।

जब उपेन्द्र अधिकाधिक दक्षिणेश्वर जाने लगे तो एक दिन उनके मामा ने उन्हें वहाँ जाने से मना कर दिया। परन्तु मामी की सहायता से उपेन्द्र की ब्राधाएँ दूर हो गयीं। अब वे बिना रोक-टोक के दक्षिणेश्वर में ठाकुर के समीप जाने लगे। आर्थिक दृष्टि से दुर्बल उपेन्द्र अन्यान्य भक्तों की भाँति ठाकुर के सेवार्थ कुछ ला नहीं सकते थे। यह सोचकर वे दुःखी होते थे। करुणामय ठाकुर ने उपेन्द्र की कुंठा को दूर करने के लिए स्वयं ही उन्हें दो पैसे की जलेबियाँ ही लाने को कह दिया। इसी कारण उपेन्द्र आजीवन अपने घर ठाकुर को जलेबी का भोग दिया करते थे।

प्रारम्भ में उपेन्द्र विवाह करने के लिए इच्छुक नहीं थे, किन्तु बाद में उन्होंने ठाकुर की अनुमति से, ठाकुर के ही परिचित एक भक्त की कन्या से विवाह कर लिया। उस कन्या का नाम ठाकुर को पसन्द न होने पर उन्होंने उसका नाम भवतारिणी रखा। आगे चलकर वे ठाकुरके द्वारा सस्नेह दिये हुए इसी नाम से उनकी भक्त मण्डली में परिचित थीं। भवतारिणी का रंग बहुत सांवला होने के कारण नरेन्द्रनाथ ने इस विवाह में आपत्ति की थी। अतः अभिमानवश भवतारिणी स्वामीजी से किंचित अप्रसन्न रहती थीं। परन्तु आगे चलकर उसका यह मनोभाव बदल गया और वह स्वामीजी से प्रसन्न रहने लगी।

धीरे धीरे उपेन्द्र का श्रीरामकृष्ण भक्त-मण्डली से परिचय घनिष्ठ होता गया। अवकाश मिलते ही वे दक्षिणेश्वर आ जाते थे। कभी कभी बगल में किताबें दबाये वे पैदल ही दक्षिणेश्वर जाते थे। यह देखकर ठाकुर कहते, "तुम रथ यात्रा भी देखोगे और केले भी बेचोगे" अर्थात् एक पंथ दो काज—साधु दर्शन और किताबें भी बेचना। परन्तु दुर्बल आर्थिक स्थिति के कारण वे भक्ति भाव के लिए अधिक चेष्टा नहीं कर पाते थे। घर में भी मामा उन्हें उनकी दरिद्रता के विषय में सदा ही कुछ न कुछ कहा करते थे। इसी कारण उपेन्द्र के हृदय में अपनी दरिद्रता के कारण पीड़ा रहती थी। श्रीरामकृष्ण ने उनसे एक दिन पूछा,—"तू क्या चाहता है ?" तब स्वतः ही उपेन्द्र ने उत्तर दिया, "मुझे अर्थ चाहिए।" भक्तहृदय,बल्लभ कृपानिधान श्रीरामकृष्ण उपेन्द्र के मनः भाव को समझते थे उसकी पीड़ा से अवगत थे। अतः उन्होंने भी आशीर्वाद

दिया, "खूब होगा"। करुणामय रामकृष्ण जानते थे कि अर्थाभाव के कारण ही सांसारिक ऋणों का भार उपेन्द्र पर इतना अधिक था कि वह भक्ति पथ पर अग्रसर नहीं हो पा रहा था। दरिद्रता जनित दुःख ही आध्यात्मिक पथ पर बाधा की सृष्टि कर रहा था। अर्थ लाभ से ही सांसारिक दुखों के दूर होने पर उपेन्द्र निश्चित होकर भक्ति मार्ग में अग्रसर होने का अवसर प्राप्त करेगा। अतः श्रीरामकृष्ण ने उन्हें कहा था कि तुझे धन खूब प्राप्त होगा। परन्तु उन्होंने उपेन्द्र को यह भी समझा दिया था कि धन ही जीवन की काम्य वस्तु तथा भक्ति का सहगामी नहीं हो सकता। ठाकुर की असीम कृपा उपेन्द्र पर वर्षित होने के कारण, उन्होंने भी प्रचुर मात्रा में अर्थोपार्जन के साथ साथ सांसारिक अभाव तथा मन की कुंठाओं के समाप्त होने पर भक्ति का भी लाभ प्राप्त किया और आजीवन रामकृष्ण संघ और भक्त मण्डली के संसर्ग में एक आदर्श गृहस्थ के रूप में रहे। धन उनके भक्ति मार्ग में बाधा न बन सहायक बन गया।

श्रीरामकृष्ण के देह त्याग के संवाद को पाकर उपेन्द्र काशीपुर श्मशान जा पहुँचे थे। चिताग्नि निर्वापित होने पर जब भक्तगण श्मशान के ही गंगाघाट पर एक के बाद एक स्नान करने जा रहे थे, तो सहसा एक विषधर सर्प दंशन से उपेन्द्र आहत हुए। भक्तों ने उनके पैर के ऊपरी भाग पर कस कर पट्टी बाँध दी और एक लोहे के टुकड़े को खूब तप्त कर दंशन के स्थान को जला दिया। श्रीरामकृष्ण की कृपा से इस उपचार से ही उपेन्द्र की जीवन रक्षा हो गयी।

ठाकुर की असीम कृपा से उपेन्द्र का व्यवसाय खूब उन्नति करने लगा। प्रचुर लाभ होने लगा। किन्तु अर्थ इन्हें कदापि भक्ति के पथ से दूर नहीं ले जा सका। वे रामकृष्ण भावधारा से संलग्न रहे। नाना प्रकार से ठाकुर की त्यागी तथा गृही संतानों की सेवा भी करते रहे। पश्चिम से जब स्वामी विवेकानन्द भारत लौट रहे थे, तो स्वामीजी का सप्रेम भव्य स्वागत करने के लिए, एक स्वागत समिति गठित हुई थी। इस समिति ने, कलकत्ता से अनतिदूर खिदिरपुर से एक विशेष रेल गाड़ी द्वारा स्वामीजी को कलकत्ते के शियालदाह, स्टेशन में लाने की व्यवस्था की। शीतकाल का समय था और यह "स्पेशल" रेलगाड़ी भोर के समय ही स्टेशन पर आने वाली थी। इधर स्वागत समिति की ओर से इस बात का प्रचार सामान्य ही था। इस कारण स्वामीजी के गुरुभाईगण चिन्तित थे। स्वामी जी के कलकत्ता आगमन के पूर्व संध्या काल में स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी योगानन्द, गिरीश घोष आदि स्वामीजी के स्वागतार्थ बने कार्यक्रम के विषय में विचार करते समय चिन्तित थे। एक तो गाड़ी बहुत सबेरे आ रही थी, उस पर शीत ऋतु। कहीं ऐसा न हो कि स्टेशन पर लोग कम ही पहुँचे। ऐसे समय, सहसा वहाँ उपेन्द्र आ उपस्थित हुए और दृढ़ स्वर में बोले, "कल स्वामीजी के दर्शन के लिए कई सहस्त्र लोग अवश्य आयेंगे। मैंने सारे कलकत्ते में, बराहनगर, काशीपुर, भवानीपुर, अलीपुर आदि स्थानों में विज्ञापन लगा दिये हैं। पचास हजार विज्ञप्ति छपवाकर बाँटे तथा दस हजार "वसुमती" जिसमें स्वामीजी की तस्वीर के साथ उनके आगमन के उपलक्ष में गिरीश घोष रचित गीत छपा था, की प्रतियाँ जनसाधारण में बिना मूल्य वितरण करवायी हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि श्री ठाकुर की कृपा से, प्रभात होने के पूर्व ही, स्टेशन जन समागम से भर जायेगा।" उपेन बाबू से यह सुनकर गुरु भ्रातागण अति प्रसन्न और आश्वस्त हुए। स्वामीजी की जीवनी से परिचित सभी जानते हैं कि उपेन्द्र की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। यह प्रचार कार्य उन्होंने स्वतः प्रेरित होकर ही किया। उनके अकृत्रिम भक्ति भाव के कारण ही यह सब सम्भव हुआ था।

उपेन्द्र पर भाग्यलक्ष्मी प्रसन्न हुई और व्यवसाय में उन्नति होती गयी। "वसुमती" का बिक्रय दिन पर दिन बढ़ने लगा। इस पत्रिका में वे बंगाल के

त्याग एवं वैराग्य [२]

– स्वामी रामवेदानन्द

जिज्ञासा : क्या बाह्य त्याग आवश्यक है ?

प्रति० : बाह्य त्याग आवश्यक है तथा यह लाभप्रद है। यदि हम आन्तरिक त्याग करते हैं तथा सच्चे हैं, तो इसकी अभिव्यक्ति बाहर भी होनी चाहिए। यदि किसी के भीतर कोई संसार अथवा परिवार नहीं हो, तो उसके बाहर भी ये सब कैसे हो सकते हैं ? त्याग की अनिवार्यता के और भी कई कारण हैं।

अधिकांश अध्यात्म ही पिपासु मध्यम श्रेणी के होते हैं। ऐसे लोगों का मन स्वयं ही सुख-भोग की वस्तुओं की ओर लालायित नहीं होता, किन्तु यदि भोग-वस्तुएं समीपस्थ हों, तो वह चंचल हो उठता है। और उन्हें पाने के लिए ललक उठता है। यदि हमने निश्चय कर लिया है कि हमारा एकमात्र उद्देश्य मन को कामनाओं से पूर्णतया मुक्त करना है, तब तो मन की ऐसी स्थिति में हमें भोगवस्तुओं से एकदम दूर रहना चाहिए। हमें शारीरिक रूप से ही समाज, परिवार तथा स्त्री-बच्चों के सम्पर्क से दूर चले जाना चाहिए; क्योंकि वास्तव में गाँव या शहर तो सुख-भोग प्राप्त करने के, यदि हम 'सुख-भोग' शब्द का व्यापक अर्थों में प्रयोग करें, विशिष्टतम स्थल हैं। वहाँ प्रायः सभी नर-नारी जाने अथवा अनजाने स्थूल या सूक्ष्म रूप से आत्मतुष्टि के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उनके तथा भोग-वस्तुओं के साथ सतत् सम्पर्क मन को नीचे खींचकर आत्मतुष्टि के स्तर पर ले जायगा। अतः आध्यात्मिक उपलब्धि के इच्छुक व्यक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ उपाय यह होगा कि वह गृहस्थों के निवास स्थानों से दूर कहीं अन्यत्र निवास करे। उसे ऐसे लोगों के सान्निध्य में रहना चाहिए, जिन्होंने पहले से ही त्यागी जीवन अपना लिया है। साथ ही उसे अपना सम्बन्ध ऐसी चीजों तथा क्रिया-कलापों से रखना चाहिए, जो पूर्णतया आध्यात्मिक हैं।

संसार में रहते हुए त्याग की भावना का विस्तार—इसका अर्थ है शक्ति का प्रचण्ड अपव्यय। फिर इसमें असफलता की अधिक संभावना है। इसमें सतत् संघर्ष है। यदि मन हमेशा विषय-वस्तुओं के सम्पर्क में आता रहे, तो वह निम्न वासनाओं से उत्तेजित होता रहेगा। उसे खींचकर निरापद अवस्था में रखना होगा। मन का नीचे जाना और उसे खींचकर ऊपर लाना, यह खेल निरन्तर चलता रहेगा। इस प्रकार जो शक्ति ईश्वरानुभूति में लगनी चाहिए, वह मन के नियंत्रण में ही व्यय हो जायगी। फिर आध्यात्मिक प्रगति नाम-मात्र की होगी। मन का संघर्ष स्नायुओं को झकझोर देनेवाला कार्य है। ईश्वर ही जानते हैं कि बिना किसी बाहरी उद्दीपना के ही मन कितना अधिक उद्दण्ड है। मन के साथ सतत् लड़ाई स्नायु रोग को जन्म दे सकती है। और यही खतरा है। अतः हममें यदि सच्चाई और आन्तरिकता है, तो हमें संसार का बाहर और भीतर दोनों ओर से त्याग करना चाहिए।

पर केवल ये ही कारण नहीं हैं जिनके लिए हमें त्याग करना चाहिए। और भी कुछ आदर्श हैं, जिनके अनुसरण और अनुभव का प्रयास ईश्वरानुभूति चाहने वाले व्यक्ति को जरूर करना चाहिए, क्योंकि वे आदर्श स्वयं ईश्वर से ही निःसृत हैं। हमें पूर्णतया निःस्वार्थपरायण होना होगा तथा सार्वभौमिक प्रेम का अभ्यास और उसकी अनुभूति करनी होगी। हमें निर्भय और सत्यवादी होना होगा। ये सभी ईश्वरानुभूति के सहगामी हैं।

इनकी प्राप्ति किये बिना हम ईश्वरानुभूति की आशा नहीं कर सकते। पर क्या हम संसार में रहते हुए यथार्थ में निःस्वार्थ हो सकते हैं? एक गृहस्थ भले ही दान-पुण्य का कार्य करता हो, पर उसे अपरिहार्य रूप से अपनी अधिकांश शक्ति माता-पिता, स्त्री-बच्चों तथा सगे-सम्बन्धियों की सेवा में लगानी पड़ती है। यद्यपि एक गृहस्थ की दृष्टि से इस ओर विशेष ध्यान देना उसका कर्त्तव्य है और इसमें निन्दनीय कुछ भी नहीं है, तथापि जो ईश्वर-दर्शन के अभिलाषी हैं, उनके लिए एक महत्तर दृष्टिकोण से, सम्पूर्ण मानवजाति के प्रति उनके कर्त्तव्यों के परिप्रेक्ष्य में यह अत्यन्त न्यून हैं। स्वजनों तथा अन्य लोगों के बीच भेदभाव, अज्ञान तथा देहासक्ति के कारण उपजता है तथा यह ईश्वरीय ज्ञान का विरोधी है। हमारे भीतर इस भेद को मिटा देने की सतत् प्रेरणा होती रहती है। जो इस प्रेरणा के प्रति अपने आपको समर्पित कर देते हैं, वे संसार त्याग कर चले जाते हैं। पर अधिकांश व्यक्ति स्वजनों के प्रति प्रेम के कारण अपने अन्तःकरण की आवाज को दबा देते हैं। वे अपना सर्वश्रेष्ठ भाग अपने स्त्री-बच्चों के प्रति लगा देते हैं। अपने परिवार से परे लाखों दुःखी व्यक्तियों की ओर उनका ध्यान बहुत कम जाता है। ऐसे जीवन में ईश्वर-दर्शन तो दूर की बात, आन्तरिक त्याग होना भी संभव नहीं है। एक गृहस्थ के द्वारा सार्वभौम प्रेम का अभ्यास कभी संभव नहीं हो सकता। उसकी जीवन-प्रणाली में ही एक अन्तर्विरोध है। सबसे प्रेम करने का तात्पर्य है सब की समान भाव से सेवा करना। और गृहस्थ चाहे जितना आध्यात्मिक हो, ऐसा नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति अपने परिवार तथा सांसारिक भोगों के प्रति आबद्ध है, उसमें यथार्थ स्वतन्त्रता, यथार्थ निर्भयता और यथार्थ सच्चाई नहीं हो सकती। उसे अपने मन, वचन और कर्म में सतर्कता बरतनी पड़ती है, ताकि उसके परिवार, स्वजन, मित्र एवं समाज की भलाई बुराई में न पड़े। उसके लिए सत्य पर प्रतिष्ठित होना कठिन हो जाता है। जिसे वह उचित समझता है, उसे कार्यान्वित करने में वह स्वतंत्र नहीं रह पाता। अपने विवेक को छोड़ उसे अन्य ताकतों की शरण लेनी पड़ती है।

और सर्वोपरि वस्तु है—शक्ति। इस दुर्दान्त मन को जीतने के लिए तथा दुस्तर माया को परास्त करने के लिए प्रचण्ड शक्ति आवश्यक है। यह शक्ति त्याग के बिना प्राप्त नहीं हो सकती।[17]

इसीलिए बाह्य त्याग पर बल देते हुए स्वामी विवेकानन्द ने अपने शिष्यों से कहा था—"सांसारिक झगड़ों को बिना त्यागे किसी की मुक्ति नहीं। जो गृहस्थाश्रम में बँधे रहते हैं, वे स्वयं यह सिद्ध करते हैं कि वे किसी न किसी प्रकार की कामना के दास बनकर ही संसार में फँसे हुए हैं। यदि ऐसा न होगा तो फिर संसार में रहेंगे ही क्यों? कोई कामिनी के दास हैं, कोई अर्थ के, कोई मान, यश विद्या अथवा पाण्डित्य के। इस दासत्व को छोड़ कर बाहर निकलने से ही वे मुक्ति के पथ पर चल सकते हैं।"[18]

(शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती के साथ स्वामी विवेकानन्द की त्याग सम्बन्धी जो वार्ताएँ विभिन्न अवसरों पर हुई थीं, उसे स्वामी-शिष्य संवाद के रूप में स्थान-स्थान पर उद्धृत किया जायेगा। ये वार्ताएँ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।)

"शिष्य—महाराज, क्या संन्यास ग्रहण करने से ही सिद्धि लाभ होता है?

स्वामीजी—सिद्धिलाभ होता है या नहीं, यह बाद की बात है। जबतक तुम भीषण संसार की सीमा से बाहर नहीं आते, जब तक वासना के दासत्व को नहीं छोड़ सकते, तब तक भक्ति या मुक्ति की प्राप्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती।"[19]

"शिष्य—क्यों, महाराज, ऋषिवाक्य तो है—

गृहेषु पंचेन्द्रियनिग्रहस्तपः,
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।

गृहस्थाश्रम में रहकर इन्द्रियों को विषयों से अर्थात् रूप रस आदि भोगों से विमुख रखने को ही तपस्या कहते हैं। विषयानुराग दूर होने पर गृह ही तपोवन बन जाता है।

स्वामीजी—गृह में रहकर जो लोग काम-कांचन का त्याग कर सकते हैं, वे धन्य हैं, परन्तु यह कर कितने सकते हैं ?

शिष्य—परन्तु महाराज, आपने तो थोड़ी ही देर पहले कहा था कि संन्यासियों में भी अधिकांश का सम्पूर्ण रूप से काम-कांचन त्याग नहीं हुआ है ?

स्वामीजी—हाँ, कहा है; परन्तु यह भी कहा है कि वे त्याग के पथ पर चल रहे हैं। वे काम-कांचन के विरुद्ध युद्धक्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं। गृहस्थों को अभी तक यह धारणा ही नहीं हुई है कि काम-कांचन की आसक्ति एक विपत्ति है। उनकी आत्मोन्नति के लिए चेष्टा ही नहीं हो रही है। उसके विरुद्ध जो युद्ध करना होगा, वह चिन्ता ही अभी तक उन्हें नहीं हुई है।

शिष्य—क्यों महाराज, उनमें से भी तो अनेक व्यक्ति उस आसक्ति का त्याग करने की चेष्टा कर रहे हैं।

स्वामीजी—जो लोग कर रहे हैं, वे अवश्य ही धीरे-धीरे त्यागी बनेंगे। उनकी भी धीरे-धीरे काम-कांचन के प्रति आसक्ति कम हो जायगी। परन्तु बात यह है, 'अब जाता हूँ, तब जाता हूँ,' 'अब होगा, तब होगा' जो लोग इस प्रकार चल रहे हैं, उनका आत्मदर्शन अभी बहुत दूर है। परन्तु, 'अभी भगवान् को प्राप्त करूँगा, इसी जन्म में करूँगा'—यह है वीर की बात। ऐसे व्यक्ति सर्वस्व त्याग देने को तैयार होते हैं; शास्त्र में उन्हीं के सम्बन्ध में कहा है यदहरेव विरजेत्, तदहरेव प्रव्रजेत्—जिस क्षण वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा, उसी क्षण वे संसार का त्याग कर देंगे।"[19]

जि० : क्या राजा जनक गृह में रहकर ही मुक्त नहीं हुए थे ?

प्रति० : राजा जनक बहुतेरे नहीं हो सकते। समूची मानवजाति के इतिहास में राजा जनक जैसा दूसरा एक भी उदाहरण नहीं मिलता। राजा जनक की बात अपवादात्मक है। साधारण नियम तो यही है कि कामिनी-कांचन का त्याग किए बिना ज्ञानलाभ नहीं होगा। अतएव हमें उनका अनुसरण नहीं करना चाहिए। उनका अनुसरण कर विरले लोग ही काम-कांचन से मुक्ति पा सकते हैं। अधिकांश लोग तो केवल दो-चार बच्चों के जनक ही बनकर रह जाते हैं।

"शिष्य—अच्छा महाराज, भक्ति शास्त्र में जो कहा है कि अधिक वैराग्य होने पर भाव नहीं रहता, क्या यह सत्य है ?

स्वामीजी—अरे फेंक दे अपना वह भक्तिशास्त्र जिसमें ऐसी बात है। वैराग्य, विषय-वितृष्णा न होने पर काक-विष्ठा की तरह कामिनी-कांचन का त्याग किये बिना न 'सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि' ब्रह्मा के करोड़ों कल्पों में भी जीव की मुक्ति नहीं हो सकती। जप, ध्यान, पूजा, हवन, तपस्या—केवल तीव्र वैराग्य लाने के लिए है। जिसने वह नहीं किया, उसका हाल वैसा ही है जैसा नाव बाँधकर पतवार चलाने वालों का— न धनेन न प्रजया त्यागेनैके-अमृतत्वमानशुः (न वंश परम्परा से और न धन सम्पदा से, वरन् केवल त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है।)

शिष्य—अच्छा महाराज, क्या काम-कांचन त्याग देने से ही सब कुछ होता है ?

स्वामीजी—उन दोनों को त्यागने के बाद भी अनेक कठिनाइयाँ हैं। जैसे उनके बाद आती है—लोक प्रसिद्धि ! उसे ऐसा वैसा आदमी सँभाल नहीं सकता। लोग मान देते हैं, नाना प्रकार के भोग आकर जुटते हैं। इसी में त्यागियों में से भी बारह आना लोग फँस जाते हैं।"[20]

"शिष्य—क्यों ? भोग करते-करते तंग आने पर अन्त में वितृष्ण आ सकती है।

स्वामीजी—धत् छोकरे, कितने को देखी है ? लगातार विषयभोग करते रहने पर मन में उन सब विषयों की छाप पड़ जाती है,—दाग लग जाता है—मन विषय के रँग में रँग जाता है। त्याग, त्याग—यही है मूल मंत्र।"[21]

जि० : फिर, बिना भोग का योग नहीं होता—इसका क्या तात्पर्य है ?

प्रति० : जिसमें विषयों के प्रति तीव्र आसक्ति है उसे योग के सम्बन्ध में कोई धारणा ही नहीं हो सकती, वह इसका कोई महत्व ही नहीं समझता। उसके लिए योग मात्र बकवास है, भोग ही जीवन का उद्देश्य है। अतएव उसके लिए एकमात्र उपाय यही है कि भोग की प्रचण्ड ज्वाला को थोड़ा शान्त करे तब योग की बातें करें। परन्तु यह बात अच्छी तरह याद रखनी चाहिए कि भोग से कभी तृप्ति नहीं होती बल्कि आग में घी डालने के समान उसकी वृद्धि ही होती है।

"न जातु कामः कामानुमुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥"[22]

तो फिर प्रश्न उठता है कि भोग से छुटकारा पाने का उपाय क्या है ? उसका एकमात्र उपाय है त्यागपूर्वक भोग करना—तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा। हमारा उद्देश्य है भोगों से निवृत्ति, वह विचार पूर्वक संयमित भोग करने से ही धीरे-धीरे हो सकती है। हिन्दू परम्परा में विवाह प्रथा, यज्ञ में बलि प्रदान आदि का विधान हमारे भोग-प्रवण मन को संयमित कर त्याग के पथ पर ले जाने के लिए ही है।

"लोके व्यवायामिषमद्यसेवा
नित्यास्तु जन्तोर्नहि तत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञ--
सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥"[23]

भगवान श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि छोटी छोटी वासनाओं को पूर्ण कर लेना चाहिए और बड़ी-बड़ी वासनाओं को विवेक से त्याग देना चाहिए।

(अगले अंक में समाप्य)

१७. साधना और सिद्धि (पृ० ५७-६४) के आधार पर।

१८. विवेकानन्द साहित्य, षष्ठ खण्ड, द्वि० सं०, (१९७३), पृ०-६२ (इसके बाद उसे संक्षेप में वि० सा०, ष० ख० लिखा जायगा।)

१९. वि० सा०, ष० ख०, पृ०-१४०-१४१

२०. वि० सा०, ष० ख०, पृ०-१३४

२१. वही, पृ०-१४०

२२. विष्णु पुराण, ४ अंश, १०/९

२३. श्रीमद्भागवत, ११/५/११

प्रत्येक धर्म-साधक एवं अध्यात्म-पिपासु के लिए अवश्य पठनीय पुस्तक

पथ और पाथेय

लेखक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
प्रकाशक—श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम,
जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१ ३०१ (बिहार)
पृष्ठ—२०१
मूल्य—१५ रुपये मात्र (डाक खर्च अलग)

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विवेदात्मानन्द

१६. स्वामीजी के साथ भ्रमण

१८९२ ई० के प्रारम्भ में मठ का आलम बाजार में स्थानान्तर हो गया। आलमबाजार मठ में लाटू महाराज ने अधिक निवास नहीं किया; केवल बीच बीच में वे वहाँ आया करते थे। स्वामी शुद्धानन्द ने लिखा है—"जहाँ तक स्मरण आता है वे आलमबाजार मठ में और स्वामीजी के आने के बाद बेलुड़ मठ स्थापित होने पर वहाँ भी थे। तथापि वे बीच बीच में इधर-उधर चले जाते थे और घूम-फिरकर वापस लौट आते थे।' अपनी बात आरम्भ करने के पूर्व हम पाठकों के समक्ष आलमबाजार मठ का एक चित्र प्रस्तुत करते हैं—

"मोटे खम्भों वाला मकान, मुख्य द्वार से प्रवेश का मार्ग, दो छोटे बरामदे, सामने आँगन और उसके पीछे तीन तरफ से खुलनेवाला पूजा का दालान, आँगन के एक किनारे स्थित गोल सीढ़ी से दुमंजिले पर जाने पर वहाँ दक्षिण और पूर्व की ओर दो बरामदे थे। पूर्व के बरामदे के पीछे के एक बड़े कमरे के सामने एक छोटा सा कमरा था। दक्षिण के बरामदे से तीन कमरों में जाया जा सकता था। बायीं ओर का कमरा मन्दिर था। मन्दिर के पास नीचे उतरने की सीढ़ी है। सीढ़ी के पूर्व की ओर के कमरे में भण्डार था। दक्षिण की ओर के एक अन्य कमरे में सबका निवास था। इसके अतिरिक्त मकान के पश्चिम की ओर भी तीन कमरे थे। उनमें से एक में शशी महाराज का निवास था। उसकी बगल के कमरे में काली महाराज तथा एक दूसरे में तुलसी महाराज रहते थे। नीचे रसोईघर के सामने एक गली थी और उसके बाद एक पक्का तालाब था। पूर्व की ओर एक और तालाब था। लाटू महाराज मठ में आकर दुमंजिले के पूर्व की ओर के एक बड़े कमरे में रहा करते थे।" (श्री महेन्द्रनाथ दत्त कथित)।

१८९१ के बाद से १८९७ ई० तक लाटू महाराज कब कहाँ निवास करेंगे इसका कोई ठीक नहीं था। इसी अवधि में उन्होंने विविध स्थानों का भ्रमण किया। उन दिनों वे कलकत्ते के विभिन्न भक्तों के घर आना-जाना करते और निमन्त्रण पाकर कभी-कभी कलकत्ते के बाहर भी गये थे। ठीक ठीक कहा जाय तो १८९१ से १८९७ ई० तक उनका निवास अधिकांशतः गंगातट पर और कुछ दिनों के लिए भक्तों के घर हुआ था। इच्छा हुई तो दस-पाँच दिन वे मठ में भी ठहर जाते थे। कभी वे बागबाजार के खर बिक्रेता केदार के घर, गिरीश बाबू के घर या बलराम बाबू के घर चले जाते। फिर कभी वे सिमला में राम बाबू के घर या दर्जीपाड़ा में हरमोहन बाबू के घर और कभी कभी पटलडांगा के श्रीयुत खगेन चट्टोपाध्याय के घर जाते। इसके अतिरिक्त बीच बीच में वे श्रीयुत नवगोपाल घोष से भेंट करते, कभी कभी अहीरीटोला के मकान पर अन्न ग्रहण करते अथवा उनके बीडन स्ट्रीट के 'वसुमती' प्रेस में निवास करते। इस काल का ठीक ठीक कालानुक्रमिक विवरण देना सम्भव नहीं है। किसी किसी वर्ष के तो केवल एक दिन की ही घटना की हमें जानकारी है और बाकी तीन सौ चौसठ दिन वे कहाँ थे यह हम नहीं जान सके। जो कुछ हम संग्रह कर सके हैं, उसे अब प्रस्तुत करते हैं।

१८९२ ई० के फाल्गुन महीने में शिवरात्रि के दिन उन्होंने आलमबाजार मठ में शिवपूजा की थी, यह बात हमने काली महाराज के मुख से सुनी है। उसके परवर्ती दिन उन्होंने एक भक्त को कहा था—"देखा न, लाटू ने कैसी शिवरात्रि की।"

विवेक चूड़ामणि

भाष्यकार— स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक— डॉ० आशीष बनर्जी

भानुप्रभासाज्जनिताभ्रपङ्क्ति
भानुं तिरोधाय विजृम्भते यथा।
आत्मोदिताहङ्कृतिरात्मतत्त्वं
तथा तिरोधाय विजृम्भते स्वयम् ॥१४२॥

सूर्य किरण द्वारा उत्पन्न मेघमण्डल जिस प्रकार सूर्य को पूरी तरह आवृत कर आकाश में फैल जाता है, आत्मा से उत्पन्न अहंकार भी उसी प्रकार आत्मतत्व को ढक कर स्वयं प्रकाशित होता है ॥१४२॥

मेघ स्थायी वस्तु नहीं है; मेघ के हट जाने पर सूर्य की स्वमहिमा प्रकाशित होती है। इस प्रकार जीव का अज्ञान जब दूर हो जाता है, तब वह अपने स्वरूप की उपलब्धि कर धन्य हो जाता हैं।

कवलितदिननाथे दुर्दिने सान्द्रमेघै
व्यथयति हिमशीतो वायुरुग्रो यथैतान्।
अविरत तमसात्मन्यावृते मूढबुद्धिं
क्षपयति बहुदुःखैस्तीव्र विक्षेपशक्तिः ॥१४३॥

मेघाच्छन्न दिवस में सूर्य के घने बादलों द्वारा आच्छन्न होने पर हिमशीतल प्रबल वायु जिस प्रकार मेघों को इधर उधर बिखेर देता है, उसी प्रकार प्रगाढ़ अज्ञान अंधकार के द्वारा आत्मा के आवृत होने पर बलवती विक्षेपशक्ति अनात्मज्ञ पुरुष को दुःख के बाद दुःख भोग कराती है ॥१४३॥

एताभ्यामेव शक्तिभ्यां बन्धः पुंसः समागतः।
याभ्यां विमोहितो देहं मत्वात्मानं भ्रमत्ययम् ॥१४४॥

उक्त आवरण और विक्षेप नाम की दोनों शक्तियाँ ही पुरुष के संसार बन्धन का कारण है। इन दोनों शक्तियों के प्रभाव से स्वस्वरूप को भूलकर जीव देह को आत्मा मानकर बारम्बार जन्म मृत्यु के अधीन होता है ॥१४४॥

बन्धन की स्थिति कहाँ है इसका वर्णन किया जा रहा है—

बीजं संसृतिभूमिजस्य तु तमो देहात्मधीरङ्कुरो
रागः पल्लवमम्बु कर्म तु वपुः स्कन्धोऽसवः शाखिकाः।
अक्षाणीन्द्रियसंहतिश्च विषयाः पुष्पाणि दुःखं फलं
नानाकर्मसमुद्भवं बहुविधं भोक्तात्र जीवः खगः ॥१४५॥

[यहाँ संसार की वृक्ष के साथ तुलना की गयी है।] इस संसाररूपी वृक्ष का उपादान कारण अज्ञान है। देह में आत्मबुद्धि इस वृक्ष का अंकुर है, आसक्ति इसके पल्लव हैं, कर्मसमूह इसका जल है (जल सींचने से जिस प्रकार वृक्ष की उत्पत्ति एवं वृद्धि होती है, उसी प्रकार कर्म समूह के द्वारा इस संसार की स्थिति होती है), देह उसका तना है, प्राण समूह उसकी शाखाएँ हैं, इन्द्रियाँ उपशाखाएँ हैं, विषय इसके पुष्प हैं, एवं नाना प्रकार के कर्मों से उत्पन्न बहुविध दुःख इस संसार वृक्ष के फल हैं। कर्मफल भोगकारी जीव इस संसार वृक्ष पर निवास करने वाली पक्षी हैं ॥१४५॥

श्रुति में भी जीव की पक्षी के साथ तुलना की गयी है। मुं, ३/१/१